Issue : June 2014

Van Sangyan

Tropical Forest Research Institute
(Indian Council of Forestry Research and Education)
PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur – 482021
Visit us at: **http://tfri.icfre.gov.in (or) http://tfri.icfre.org**
Write to us at: **vansangyan_tfri@icfre.org**

From the Editor's desk

India has 17000-18000 species of flowering plants of which 6000-7000 are estimated to have medicinal usage in folk and documented systems of medicine, like Ayurveda, Siddha, Unani and Homoeopathy. Medicinal plants are not only a major resource base for the traditional medicine & herbal industry but also provide livelihood and health security to a large segment of Indian population. This issue of *Van Sangyan* includes the uses of some medicinal plants and herbs, and other useful articles.

An article on insects of medicinal plants was discussed in the previous issue of *Van Sangyan*. The same has been translated to Marathi in the current issue, in order to reach readers in Maharashtra also.

I hope that you would find all information in this issue relevant and valuable.

Readers of *Van Sangyan* are welcome to write to us about their views and queries on various issues in the field of forestry.

Looking forward to meet you all through forthcoming issues.

Dr. N. Roychoudhary

Chief Editor

Contents

Page

औषधीय पौधों व जड़ी–बूटियों के उपयोग
– डॉ. राजीव राय 1

कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि (एन्टोमोपॅथोजेनिक निमेटोड्स)–एक प्रभावी जैव कीटनाशक
– संजय पौनीकर, मंसूर अहमद एंव डॉ. नितिन कुलकर्णी 3

ब्रह्मकमल (स्नो लोटस)
– डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं ट्रीसा हेमल्टन 6

औषधी रोपांवर लागणारे किड़ आणी त्यावर जैविक नियंत्रण
– डॉ. पी. बी. मेश्राम 9

पांढरी अळी (व्हाईट ग्रब्स) वन रोपवाटिकाचा एक महत्वपूर्ण कीटक
– संजय पौनीकर व डॉ. नितिन कुलकर्णी 16

International Seed Testing Association (ISTA): Position, experience and activities in respect to seed health
- Naseer Mohammad, Hari Om Saxena and Tresa Hamalton 19

ट्रेप–ट्री विधी द्वारा साल छेदक का प्रबंधन
– आनन्द कुमार दास, राम भजन सिंह, डॉ. एन. कुलकर्णी एवं डॉ. एन. रायचौधरी 24

पेड़ों पर बसते है, हमारे प्राण
– ममता मेश्राम 26

सौर हलचल और पर्यावरण
– डॉ. राजेश कुमार मिश्रा 29

Know your Biodiversity
(*Aristolochia indica* & *Copsychus saularis*)
- Sanjay Singh and Dr. P.B. Meshram 32

औषधीय पौधों व जड़ी-बूटियों के उपयोग

डॉ. राजीव राय

वन विस्तार प्रभाग, उ.व.अ.स., जबलपुर

भारतवर्ष में हजारों सालों से औषधीय पौधों व जड़ी–बूटियों के उपयोग का प्रचलन रहा है। यह उपयोग आज हीं से नहीं वरन् आदिकाल से प्रचलित है, जिनमें रिग वेद जो कि 4000 से 1600 ईसा पूर्व तक में, अर्थव वेद में, अलावा चरक संहिता में औषधीय पौधों के उपयोगिता का वर्णन किया गया है। अर्थव वेद में औषधीय पौधों के गुणों उपयोग का उल्लेख विस्तार से किया गया है। चरक संहिता में में 341 पौधों का औषधीय गुण व उपयोग किया गया है तथा सुश्रुत संहिता में भी इन पौधों का वर्णन किया गया है।

इन औषधिय प्रजातियों से उपयोग धीरे–धीरे भारतवर्ष के अलावा चीन, अमेरिका, ईगलैण्ड, फ्रॉस, यूरोप के विभिन्न राज्यों में भी प्रचलन धीरे–धीरे बढ़ रहा है। इन औषधीयों में से काफी मात्रा में उपयोग विदेशों में होने से वहॉ इनकी मॉग बढ़ गई है एवम् इनका निर्यात होने लगा है। हमारे देश के विभिन्न राज्यों से जहॉ यह बहुमूल्य वनस्पति पाई जाती है इन जंगलों से जड़ के रूप में, कन्द, पत्ती, तना, छाल, फल–फूल इन बहुमूल्य औषधीय वनस्पति उपयोग मॉग बढ़ गई है।

कुछ उपयोगी वनस्पति के संबद्व में टीप प्रस्तुत है :

क्रं.	पौधे का नाम	उपयोग में लाया जाने वाला भाग	गुण व उपयोग विवरण
1	अर्जुन चूर्ण	छाल	उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, लीवर के रोग, उपचार में, खून की कमी, कमजोरी
2	ऑवला चूर्ण	फल	आम्लता, कब्ज, आंखों की रोशनी, रक्त पित्त, धातुवर्धक बदहजमी, प्रमेय हरने वाला रसायन के उपचार में उपयोग
3	शिवलिंगी चूर्ण	बीज फल	बलवर्धक शुकाणुओं में वृद्वि, महावारी के तीसरे दिन करेले के साथ बॉझ स्त्री को बासी मुँह, दो चम्मच संतान प्राप्ति के लिए गर्मपानी या गर्म दूध के साथ गुड़/शक्कर युक्त दूध 2–3 दिन गर्भधारण तक
4	चिरायता (चूर्ण)	फल व पत्ती पावडर	ज्वार, मलेरिया बुखार, खुजली, चर्म रोग, उपचार में उपयोग
5	चिरचिटा	पंचाग	सिर दर्द के साथ ज्वर व मलेरिया बुखार आदि मे उपयोग
6	कालमेघ	पंचाग	पीलिया, मोतीझिरा, बुखार मलेरिया ज्वर के उपचार में उपयोग
7	वनझुरिया	जड़ का काढ़ा	चक्कर, कमजोरी, पीलिया ग्रस्त मरीज के उपचार में उपयोग
8	काली मूसली	जड़	नपुंसकता, कमजोरी, शीघ्रपतन के उपचार में उपयोग
9	बच	राईजोम पेस्ट	सर्दी, खॉसी, ऑखों की कम रोशनी
10	मालकॉगनी	बीज से तेल	रूयेमेटिक दर्द, लकवा रोग, गाठियावात, जोड़ों का दर्द, लकवा ग्रस्त
11	रतन जोत (तेल)	बीज से तेल	गठियावात, जोड़ों का दर्द कमर दर्द के उपचार में उपयोग
12	निगुण्डी तेल	बीज पत्ती का तेल	जोड़ों का दर्द लकवा रोग में 2–3 महीने में लाभ तेल का उपयोग खुजली, दाद, खाज आदि में
13	आमा हल्दी (पेस्ट)	पत्ती व पंचाग	बाब्राईटीस, खॉसी, सर्दी जुखाम के उपचार में उपयोग
14	एलोवेरा (पेस्ट)	पत्ती का पेस्ट (जैल का प्रयोग)	सौंदर्य प्रसाधन, चेहरे से दाग व झुर्रियां हटाना
15	गिलोय चूर्ण	जड़, पत्ती, फल	पीलिया रोग में लाभ, गठिया रोग, जीर्ण ज्वर के उपचार में उपयोग
16	भुई ऑवला चूर्ण	पंचाग व पत्ती	पीलिया रोग में लाभ, कमजोरी, शीध्रपतन बदहजमी व उपचार व उपयोग
17	कसौधी	पंचाग	पीलिया रोग में उपयोगी शक्तिवर्धक

18	केवाच	बीज, जड़, पत्ता	काम शक्ति वर्धक, कमजोरी के उपचार में उपयोगी
19	ब्रहम्ही	पंचाग	स्मरण शक्ति वृद्वि अनिद्रा, मिर्गी के उपचार में उपयोगी
20	गुणभार	पत्ता, जड	पेचिस मधुमेह, खॉसी के उपचार में उपयोगी
21	पीपल	जड़, छाल	कफ, पित्त, स्त्रीयो का बाझपन दूर करने में उपयोगी
22	जामुन	गुठली, छाल	एक्जीमा, खूनी पेचिस आदि मे उपचार हेतु
23	भृंगराज	पंचाग	बालों का झड़ने से बचाना, धने करना,बालों में काला रंग रोगन के लिय उपयोग
24	विलवा	फल, गूदा	बवासीर, कब्ज, खूनी पेचिस आदि में उपचार में उपयोग
25	सनाय	पत्तियॉ	कब्ज उदर विकार उपचार में उपयोग
26	सतावर	कंदमूल	वीर्य वृद्वि, स्त्रीयों में दूध की वृद्वि, रक्त प्रदाय उपचार में उपयोगी।
27	सतावर	कंदमूल	वीर्य वृद्वि, दुबलापन दूर, माता में दूध में वृद्वि, प्रसव के बाद के रोगों से मुक्ति आदि
28	आपामीग	पंचाग	पथरी, दमा,सूखी खॉसी, बिच्छू के काटने से दर्द में कमी के उपचार में उपयोग
29	कलिहारी	कंद, बीज	चोट, जख्म कट फटे स्थल के घाव भरने के उपचार में उपयोग सर्पदशा में जहर कम करने में उपयोग
30	मुनगा	वृक्ष का तना व छाल पेस्ट	पेस्ट का प्रयोग सर्दी, जुखाम अस्थमा आदि रोग में उपयोगी
31	मुलेठी	कंद मूल, जड़	पानी में तैयार एकेटेवट का उपयोग दमा, सर्दी व जुखाम हेतु
32	जंगली हल्दी	रायजोम	पत्तीयों का उपयोग झाला जखम, कटे फटे अंगों के उपचार गॉठ का उपयोग दूध में सर्दी दमा आदि में प्रयोग
33	करंज	फल का तेल (बीज से तेल)	तेल का उपयोग सूजन, दर्द गठियाबात् चर्म रोग, खुजली आदि में
34	सेमल	फल	किडनी में फोडा, महिलाओं में शेवत प्रदर के उपचार में प्रयोग
35	बैचॉदी चूर्ण	पंचाग कंद	रक्तचाप, बीपी, आदि में उपयोग
36	बायबिड़िग	बीज	पेट के कृत्रिम कीड़े, दांतों का दर्द के उपचार में उपयोगी
37	चित्रक	जड़	लेप का प्रयोग सिर दर्द, बदन दर्द, सूजन, आदि रोग के उपचार में उपयोगी
38	शंख पुष्पी	पंचाग	याददश में लाभ, ब्रेन टानिक के रूप में उपयोगी
39	सनाय	पत्ती, फल	चूर्ण का उपयोग पेट में मरोड दस्त पाचन किया में सुधार के लिये उपयोगी
40	हथजोड	पत्तियॉ	पेस्ट बनाकर हड्डी जोडने में उपयोग
41	चितवार	लकड़ी	चितावर व केवकंद का लेप बनाकर टूटी हड्डी जोडने में उपयोग
42	नागदाना व करई	पंचाग	लेप बनाकर खुजली के स्थान पर प्रयोग
43	इंद्रावन	जड़ लेप	र्स्पदशा में जड़ का उपयोग व लेप काटे स्थान पर खून निकाल कर लगाने से पीड़ा व जहर के निष्कासत में लाभ
44	हर्रा	पत्तियों का रस	खॉसी के उपचार में पत्तियों के रस का उपयोग
45	अश्वगंधा	जड़	मोटापन, शक्ति वर्धक, वीर्यवर्धक गठियावात के उपचार में उपयोगी
46	हर सिगार	पत्ती छाल	दमा रोग, जलन, गंजापन के उपचार में उपयोगी
47	सर्पगंधा	जड़	उच्च रक्तचाप, पागलपन मिर्गी रोग के उपचार में उपयोगी
48	बच	जड़	श्वेत दाग, अतिसार, स्मरण शक्तिवर्धक रोग के उपचार में उपयोगी
49	गूग्गल	गोंद	रक्तशोधक, बवासीर, कृमिनाशक
50	गुलकावली	अर्क	ऑख दर्द, ऑख सूजन, जलन के उपचार में उपयोग
51	गुड़मार	पत्ती	मधुमेह, पेशब जलन, सर्पविष के उपचार में उपयोगी
52	पुनर्वा	पंचाग	बिच्छू दशा, उदर रोग, पीलिया बात आदि के उपचार में उपयोगी
53	केवकंद	कंद	सर्पदंशा, भूख बढ़ाने में

कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि (एन्टोमोपॅथोजेनिक निमेटोड्स)-एक प्रभावी जैव कीटनाशक

संजय पौनीकर, मंसूर अहमद एंव डॉ. नितिन कुलकर्णी

वन कीट विज्ञान प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

जब से रासायनिक कीटनाशको का हानिकारक प्रभाव पर्यावरण, मानव एंव अन्य लाभकारी जीवजंतुओ पर पड़ने लगा तब से विश्व के वैज्ञानिकों ने अन्य वैकल्पिक कीटनाशको मुख्यता जैव कीटनाशको (Biopesticides) पर खोज एंव अनुसंधान करना प्रारंभ किया, ताकि इसका दुष्प्रभाव पर्यावरण, मानव एंव अन्य लाभकारी जीवजंतुओ ना पड़े। इस हेतु विभिन्न जैव कीटनाशको पर शोधकार्यो के पश्चात कुछ प्रभावशाली जैव कीटनाशको को कीट नियंत्रण मे उपयोगी पाया गया, जो इसप्रकार है, जैव कीटनाशकों में पौधों से निकाले गये वानस्पतिक रसायन/कीटनाशक (Botanical pesticides), परजीवी (Parasites and Parasitoids), रोगकारक (Pathogens), सूक्ष्मजीव जैसे प्राटोजोआ (Protozoa), फंफूद (Fungi), जीवाणु (Bacteria), विषाणु (Viruses), परभक्षी कीट और अन्य जीव (Predators) एंव कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि (EPN-Entomopathogenic Nematodes) है।

इनमे से आजकल कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि का उपयोग विश्व स्तर पर एक प्रभावी जैव कीटनाशक के रूप में हानिकारक कीटों के विरूध्द् बड़े पैमाने पर हो रहा है। कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि एक अपुष्ठवंशीय (Invertebrates) जीव है जो प्राणी जगत (Animal Kingdom) के फायलम निमेटोडा (Phylum: Nematoda) के अन्तर्गत वर्गीकरण किया गया है। आज सूत्रकृमि की 20,000 प्रजातियों की पहचान की गयी है। कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि वो कृमि है जो केवल कीटों को ही मारती है। कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि के रोगकारक ज्युवेनाईलस् (Infective juveniles) हानिकारक कीटों के शरीर में प्राकृतिक रूप से खुले छिद्रो जैसे मुंह, गुदा, रोमछिद्र या त्वचा (Cuticle) के माध्यम से कीट के शरीर में घातक जीवाणु को छोडकर कीट को मार देते है और कीट (Larvae) कोमल एंव पिलपिली कडावर (Cadavers) में पुनरोत्पादन करते है, इन्हे ही कीटों में रोग फैलानेवाले सूत्रकृमि या कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि कहते है ।

कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि की विशेषताए इसको दूसरे जैव कीटनाशक से बहुत ही प्रभावशाली जैव कीटनाशक बनाती है। इनकी विशेषताए इस प्रकार है, कुछ ही जल्द समय में ये बहुत सारे कीटों (होस्ट) को तुरंत मारने की क्षमता है इनका बडे स्तर पर उत्पादन कर सकते है। पश्चिमी देशों मे EPN के उत्पादो को पंजीकृत करने की आश्यकता नही है बहुत सारे (Wide-host range) कीटों पर असरदार है। कीटों में विषाक्ता (Pathogenecity) दर ऊंची है। रासायनिक संकेत (Chemical clue) द्वारा कीटों तक पहुंचते है। सुविधाजनक तौर पर इन विट्रो (*In Vitro*) में उत्पादन कर सकते है पृष्ठवंशीय प्राणी, पौधों, लाभदायक जीवजंतु तथा मानवजाति के लिए सुरक्षित है। रासायनिक कीटनाशको, जैव कीटनाशी (जैसे, फफूंद, जीवाणु और वानस्पतिक कीटनाशक) के साथ मिलाकर उपयोग कर सकते है। विस्तृत विविधतावाली आनुवंशावली (Wide Genetic Diversity) है। इनकी इन विशेषताओं के कारण कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि को समन्वयकित कीट प्रबंधन में (IPM-Integrated Pest Management) में समावेश कर आजकल विश्व में कृषि तथा वनों के विभिन्न कीट प्रजातियों के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाया जा रहा है।

बहुत पहले वैज्ञानिक ग्लेसर ने 1932 में कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि को एक जैव कीटनाशक के रूप में

पहचान की थी। उन्होने इस कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि, *स्टीनरनेमा ग्लेसरी* (*Steinernema glaseri*) को जापानी भृंगो (Japanese Beetles) पर खोज की थी। कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि के स्टीईर्नेनिमाटीडी और हेटरोरहाब्डिटिडी नामक दो वंश है। जो क्रमशः स्टीनर्निमेटिडी (Steinernematidae) और हे टरो रेहाब्डिटिडी (Heterorhabditidae) परिवार से संबंध रखती है तथा जीनोरेब्डस (*Xenorhabdus*) या फोटोरेब्डस (*Photorahbdus*) वंश के सहजीवी जीवाणु (symbiotic-bacteria) के साथ सहयोग रखती है। ये मिट्टी मे रहनेवाले, कीटोपर पलनेवाले परजीवी है, इनका उपयोग कीट नियंत्रण के लिए जैव कीटनाशक के रूप में किया जाता है।

वैज्ञानिक राव औ र मंजुनाथ ने 1966 में भारत में पहली बार विदेशों से आयात डी. डी.–136 कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि की प्रजाति का प्रयोग धान, गन्ना औ र सेब के विभिन्न प्रजातियों के कीटों को नियंत्रित करने के लिए किया गया है। इसके बाद में विभिन्न वैज्ञानिकों ने कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि को कृषि के कीटों जैसे कटवर्म, रागी का गुलाबी बो रर, धान की पत्ती का फोल्डर, तना छेदक, पॅडी गाल मीज, गन्ना छेदक, सफेद भृंग,लाल केशोवाली इल्ली इत्यादि को प्रयोगशाला और प्रायोगिक क्षेत्र में नियंत्रित करने के लिए उपयोग में लाया गया है। कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि का अधिक से अधिक कीटों के विरूध्द् उपयोग करना, उनके जीवनचक्र का अध्ययन करना, उनकी गुणवत्ता, जैव क्षमता तथा प्रायोगिक क्षेत्र में कीटों के विरूध्द परिक्षण करना इत्यादि क्षेत्र में प्रगति हुई है। अभी भारत में कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि, स्टीनरने मा की कुछ नयी प्रजातियॉ (New species) जैसे *स्टीनरनेमा थर्मोफिलियम, स्टीनरनेमा सिमी, स्टीनरने मा मसूदी* की खोज की गयी है।

1 कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि से रोगजनित मृत कीट

2 रोगजनित मृत कीट से कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि बाहर निकलते हुये

3 कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि बाहर निकलते हुये

4 कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि

भारत में कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि का उपयोग कृषि के विभिन्न प्रजातियों के कीटों को नियंत्रण करने के लिए विस्तृत अनुसंधान कार्य हो रहा है। परंतु अभी तक इन सूत्रकृमि का प्रयोग वन तथा वृक्षारोपण फसल (Plantation Crops) के विभिन्न प्रजातियों के कीटों के नियंत्रण करने में नही हुआ है।

भारत में पहली बार उष्ण कटिबंधिय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर द्वारा कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि का उपयोग वानिकी के कीटों के विरूध्द् किया जा रहा है। अभी तक मध्य भारत (central India) के स्थानीय वातावरण (native enviornment) से सात स्थानीय कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि की प्रजातियों (Indignous species/ populations) की खोज की गयी है। कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि एक प्रजाति जिसका नाम *स्टीनरनीमा धारनायी* (TFRIEPN-15, *Steinernema dharanaii*) रखा गया है विज्ञान के लिए नयी (New-to-Science) प्रजाति है। अभी तक उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान में कुछ स्थानीय प्रजाति और कुछ बाहरी प्रजाति जो (राष्ट्रीय कृषि महत्व के कीट संस्थान (NBAII-National Bureau of Agriculturally Important Insect) बंगलुरू से लायी गयी थी उनका प्रयोग वानिकी के कुछ कीटों जैसे व्हाईट ग्रब्स, दीमक, सागौन, बॉम्बू एंव सीरस के कीटों के विरूध्द् किया गया है।

विश्व के बहुत से देशो में कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि काउपयोग कृषि, बागवानी, घर, बगीचों, जनस्वास्थ के हितो, वनों तथा वृक्षारोपण फसल के कीटों की विभिन्न प्रजातियों को नियंत्रित करने में सफलतापूर्वक किया गया है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि के व्यापारिक उत्पाद उपलब्ध है। इनके उत्पाद का उपयोग विस्तृत कीटों को निंयत्रित करने में किया जा रहा है। अब तक *स्टीनरनीमा* प्रजाति के चार तथा हेटरोरहाब्डिटिडिस प्रजाति के एक उत्पाद के 21 कीटों को निंयत्रण करने में विभिन्न देशों में प्रभावी पाया गया है, कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि की प्रजाति के 17 पंजीकृत उत्पाद यू.ए.एस., यू.के. स्विटजरलैंड, जर्मनी औ र कनाडा में उपलब्ध है।

वर्तमान में कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि का उपयोग देश के प्रमुख विभिन्न शोध संस्थान जिसमें उष्ण कटिबंधिय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर भी शामिल है, में किया जा रहा है ताकि भारत में वानिकी, कृषितथा अन्य फसलों के हानिकारक प्रजातियों के कीटों का प्रकोप तथा आर्थिक हानि कम किया जा सके और पर्यावरण, मानव एंव अन्य जीवजंतुओं को रासायनिक कीटनाशको के हानि कारक प्रभाव से बचाया जा सके।

ब्रह्मकमल (स्नो लोटस)

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं ट्रीसा हेमल्टन

संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग/आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन प्रभाग
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

ब्रह्मकमल हिमालय के पर्वतीय भागों में उगने वाला एक अत्यंत मोहक पुष्प है। इसका वैज्ञानिक नाम साउसिव्यूरिया ओबलावालाटा (*Saussurea obvallata*) है। ब्रह्मकमल एस्टेरेसी कुल का पौधा है इसके नजदीकी रिश्तेदार हैं, सूर्यमुखी, गेंदा, गोभी, डहलिया, कुसुम एवं भृंगराज जो इसी कुल के अन्य प्रमुख पौधे हैं। अँग्रेजी में इसे स्नो लोटस कहते हैं। इसके विलक्षण गुणों से सम्पन्न होने के कारण ही इसे हिमालय के पर्वतीय फूलों का राजा कहा जाता है। यह ऊँचाई पर बर्फीले पर्वतों में खिलने वाले फूलों में सबसे मोहल एवं पवित्र पुष्प होता है। ब्रह्मकमल ऊँचाई वाले क्षेत्रों का एक दुर्लभ पुष्प है जो कि सिर्फ हिमालय, उत्तरी बर्मा और दक्षिण-पश्चिम चीन में पाया जाता है। धार्मिक और प्राचीन मान्यता के अनुसार ब्रह्म कमल को इसका नाम उत्पत्ति के देवता ब्रह्मा के नाम पर मिला है।

ब्रह्मकमल कमल की अन्य प्रजातियों के विपरीत पानी में नहीं वरन धरती पर खिलता है। सामान्य तौर पर ब्रह्मकमल हिमालय की पहाड़ी ढलानों या 3000-5000 मीटर की ऊँचाई में पाया जाता है। इसकी सुंदरता तथा दैवीय गुणों से प्रभावित हो कर ब्रह्मकमल को उत्तराखंड का राज्य पुष्प भी घोषित किया गया है। वर्तमान में भारत में इसकी लगभग 60 प्रजातियों की पहचान की गई है जिनमें से 50 से अधिक प्रजातियाँ हिमालय के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ही पाई जाती हैं। उत्तराखंड में यह विशेषतौर पर पिण्डारी से लेकर चिफला , रूपकुंड, हेमकुण्ड, ब्रजगंगा, फूलों की घाटी , केदारनाथ तक पाया जाता है। भारत के अन्य भागों में इसे और भी कई नामों से पुकारा जाता है जैसै - हिमाचल में दूधाफूल , कश्मीर में गलगल और उत्तर-पश्चिमी भारत में बरगनडटोगेस। साल में एक बार खिलने वाले गुल बकावली को भी कई बार भ्रमवश ब्रह्मकमल मान लिया जाता है।

ब्रह्मकमल एक धार्मिक महत्व का पुष्प है एवं

पर्वतीय क्षेत्रों में यह उसी तरह पूजनीय है जिस प्रकार मैदानी क्षेत्रों में कमल एवं गुलाब है। पर्वतीय क्षेत्रों के धार्मिक अनुष्ठानों में ब्रह्मकमल का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। ब्रह्मकमल धार्मिक महत्व के साथ-साथ औषधीय महत्व का भी वृक्ष है। इसके विभिन्न अंगों से अनेक प्रकार के रोगों जैसे सर्दी खाँसी, जुकाम, पाचन संबंधी बीमारियाँ, घाव, हड्डी टूटने आदि के उपचार की औषधियाँ तैय्यार की जाती हैं। तिब्बत में इसके पौधे की जड़, तने, फूल, पत्ती आदि का उपयोग औषधि निर्माण में किया जाता है। ब्रह्मकमल हमारे देश की संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। यह पुष्प अपनी रक्षा करने में सक्षम है। यह पर्वतीय एवं दुर्गम स्थलो में उगता है जहाँ मानव आसानी से नहीं पहुँच पाता है और यह सुरक्षित बना रहता है।

ब्रह्मकमल के पौधे पाँच सेन्टीमीटर से तीन मीटर तक ऊँचे होते हैं। यह भारतवर्ष सहित एशिया के अनेक प्रांतों में पाया जाता है। हमारे देश में प्रमुखतः यह जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्कीम और उत्तरांचल में पाया

जाता है। संसार में लगभग चार सौ प्रकार के ब्रह्मकमल पाये जाते हैं। इनमें से लगभग साठ प्रकार के ब्रह्मकमल भारत में पाये जाते हैं। ब्रह्मकमल की सर्वाधिक प्रजातियाँ लगभग इक्कीस उत्तराँचल में पायी जाती है। ब्रह्मकमल मुख्यतः ऊँचे पहाड़ी इलाकों, दुर्गम स्थलों, पहाड़ी ढलानों, सपाट चट्टानों, नदियों तथा प्राकृतिक जल स्रोतों के पास उगनेवाला पौधा है।

ब्रह्मकमल का मूल स्थान हिमालय है। हिमालय में पाया जाने वाला ब्रह्मकमल, भारत के मैदानी भागों एवं विश्व के अन्य भागों में पाये जाने वाले ब्रह्मकमल से पूर्णतया भिन्न होता है। शोध द्वारा इसका कारण हिमालय की उत्पत्ति से जुड़ा होना बताया गया है। आज से करोड़ों वर्ष पूर्व सभी भू भाग एक दूसरे से जुड़े हुए थे। धरती के नीचे वाले भाग में जोरदार हलचल के फलस्वरूप विशाल अलग अलग होकर महाद्वीप बन गये। इसी काल में मेडागास्कर के पास एक विशालकाय भू खण्ड जम्बूद्वीप उत्तर कि ओर आकर एशिया से जुड़ गया। यही जम्बूद्वीप भारत है। इसी काल में मेडागस्कर और भारत के मध्य का समुद्र तल ऊपर उठकर हिमालय पर्वत बन गया। हिमालय की मिट्टी पर्वतीय होते हुए भी उपजाऊ थी इसी कारण हिमालय में अनेक प्रकार की बहुमूल्य वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई। हिमालय की मिट्टी और जलवायु शेष भारत की मिट्टी और जलवायू से भिन्न होने के कारण ब्रह्मकमल सहित हिमालय की अन्य वनस्पतियाँ भारत के मैदानी भागों एवं विश्व के अन्य भागों में पायी जाने वाली वनस्पतियों से भिन्न हैं।

यह एक बहुवर्षीय, सदाबहार एवं झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसमें बर्फ एवं बर्फीली हवाओं को सहन करने की अद्भुत क्षमता होती है। इसकी जड़ें मोटी, घुमावदार, तना पतला एवं शाखा विहीन होता है। इसकी पत्तियाँ हरे रंग की दस से बीस सेन्टिमीटर तक लम्बी होती हैं। ब्रह्मकमल के पौधे में अगस्त-सितम्बर के महिनों में फूल खिलते हैं। ब्रह्मकमल का फूल तीव्र सर्दी में अपने आसपास की पत्तियों गर्मी द्वारा खिलता है। इसका पुष्प हल्के पीले से लेकर गहरे पीले रंग का तक होता है। इसकी लम्बाई पन्द्रह से बीस से.मी. तक एवं व्यास सात से पन्द्रह से.मी. तक हो सकता है। ब्रह्मकमल के पुष्प में कमल के पुष्प के समान नाव स्वरुप पंखुड़ियाँ होती हैं जो सिरों पर नलिका की आकृति की होती हैं। ब्रह्मकमल के पुष्प पर सफेद और हल्के बैंगनी रंग के रोएँ सदृश्य बाल होते हैं जो ब्रह्मकमल की पाले और तेज धूप से रक्षा करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में उगनेवाले फूलों में इसे सर्वोत्तम माना गया है और इसके इन्ही विशिष्ट गुणों के कारण ही इसे हिमालय के पर्वतीय फूलों का राजा कहा जाता है।

ब्रह्मकमल पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रुप से उगनेवाला पौधा तथापि इसे अन्य स्थानों में उगाने के प्रयास भी किये गये हैं। इसे बीजों की सहायता से उगाया जाता है। यह रेतीली एवं चिकनी मिट्टी में आसानी से उगता है परन्तु अम्लीय, क्षारीय एवं सामान्य भूमी में भी यह सरलता से उगता है। यह नम भूमी एवं पूर्ण धूप में अच्छी तरह से विकसित होता है। भूमि मे खाद और पानी डालकर अच्छी किस्म के बीज बो दिये जाते हैं। भूमि में बीज बोकर मिट्टी की एक हल्की सी परत डाल दी जाती है। इसका शीघ्र अंकुरण होता है और सर्दियाँ प्रारंभ होते होते इसका पौधा तैय्यार हो जाता है। पौधे को भूमि से निकाल कर गमले में रोपकर हरितगृह में रख देते हैं। सर्दियाँ समाप्त होते ही पौधे को हरित गृह से निकाल कर तैय्यार भूमि में रोप दिया जाता है।

ब्रह्मकमल के पौधे में एक साल में केवल एक बार ही फूल आता है जो कि सिर्फ रात्रि में ही खिलता है।

दुर्लभता के इस गुण के कारण से ब्रह्म कमल को शुभ माना जाता है। इस पुष्प की मादक सुगंध का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है जिसने द्रौपदी को इसे पाने के लिए व्याकुल कर दिया था।

पिघलते हिमनद और उष्ण होती जलवायु के कारण इस दैवीय पुष्प पर संकट के बादल पहले ही गहरा रहे थे। भक्ति में डूबे श्रद्धालुओं द्वारा केदारनाथ में ब्रह्मकमल का अंधाधुँध दोहन भी इसके अस्तित्व के लिए खतरा बन गया है। इसी तरह हेमकुण्ट साहिब यात्रा में भी ब्रह्मकमल को नोचने का रिवाज-सा बन गया है। पूजा-पाठ के उपयोग में आने वाला औषधीय गुणों से युक्त यह दुर्लभ पुष्प तीर्थयात्रीयों द्वारा अत्यधिक दोहन से लुप्त होने की कगार पर ही पहुँच गया है।

तीर्थ स्थानों में न सिर्फ प्राकृतिक परिस्थितियों के साथ मनमानी की जा रही है , बल्कि बेशकीमती स्थानीय प्रजातियों को भी नुकसान पहुँचाया जा रहा है। जैसे बद्रीनाथ में गंधमाधन तुलसी की बहुतायत थी। इसी तुलसी का अभिषेक भगवान बद्रीनाथ को किया जाता रहा है , पर अब इसकी माला बनाने से लेकर प्रसाद के रूप में अंधाधुँध तरीके से नोच खसोट कर इसका जो अंधाधुँध दोहन किया जा रहा है, उससे इसकी स्थिति काफी दयनीय हो चली है । इसी प्रकार ब्रह्मकमल जिसे भगवान ब्रह्मा के कमल का नाम दिया गया था , का भी अंधाधुँध दोहन के चलते अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। इनकी कमी के चलते बद्रीधाम मंदिर समिति ने उत्तराखंड सरकार से इनके संरक्षण के लिए गुहार भी लगाई है। इस संकट से उबरने के लिए हिमाचल और उत्तराखंड सरकारों को अब जल्दी ही कोई कदम उठाना पड़ेगा।

ब्रह्मकमल एक पावन एवं औषधीय महत्व का वृक्ष है। अतः इसका संरक्षण करना मानव का कर्त्तव्य है। पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यटन हेतु जाने वाले लोग इस पुष्प को अनावश्यक रूप से तोड़कर इसे हानि पहुँचा रहे हैं। प्रकृति की अमूल्य धरोहर के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम लोगों को इसके महत्व के विषय में जागरूक करें एवं इसके सरंक्षण के उपाय कर इसे लुप्त होने से बचायें।

औषधी रोपांवर लागणारे किड़ आणी त्यावर जैविक नियंत्रण

डॉ. पी. बी. मेश्राम

वन कीट प्रभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

परिचय

औषधीय रोपे विभिन्न प्रकारच्या किट, फंफूद यानि वेळो वेळी ग्रसित झालेले असते. त्यामुळे रोपे कमजोर होतात किवा कधि–कधि वाळतात सुध्दा. अशा प्रकारची औषधी रोपांची व्यवसायिक शेती विफल होते त्यामुळे कच्या मालाची आवक आनि साठा त्यावर त्याचा प्रभाव पड़तो. म्हनूणच लागना–या वेगवेगळया किटांचा निट अभ्यास करूण त्यावर रोकथाम आवश्यक आहे. ज्यामुळे औषधि रोपांची रक्षा आणि उत्पादनात वाढ होइल, औषधी रोपावर किटांची सुरूवात केव्हा होते ते कळतच नाही जेव्हा किटांचे ज्यास्त प्रमान वाढते तेब्हाच कीट लागलेली आहे असे निदर्शनास येते. अशावेळेस रोपांच्या जवळ असलेल्या लोकांनी त्याचा शिरकाव होण्याची वेळ आणी त्या पासूण होनारे नुकसान याची ओळख करून दिल्यास, होना–या नुकसाणी पासुन संरक्षण मिळेल. कीट साधारणतः सर्वच ठिकानी असते पण त्याची संख्या आणी रोपावर होनारी सुरूवात. त्याचे प्रमाण वर्षातिल विभिन्न वेळेस, त्याच्या वातावरणात होना–या बदलावा मुळे त्याच्या भोजनात, जलवायु परिवर्तन क्रियात किटनाशकांचा वापर यावर त्याचे प्रमाण निर्भर असते. जेत्हा किटांचे आक्रमण सामान्य पेक्षा ज्यास्त असते तेव्हा त्यावर नियंत्रणाचे उपाय करावे. यासाठी सर्वेक्षण करून कीटांच्या आक्रमणाची दशा आणि पूर्णमाहिती करूण घेने आवश्यक असते. तेव्हाच आपण त्यावर चांगल्या प्रकारे नियंत्रण करू शकतो. प्रस्तुत लेखा प्रमुख किट व त्यावर जैविक नियंत्रणाद्वारे उपाय या विषयावर संक्षिप्त माहिती सादर केलीली आहे.

(1) सफेद झिंगर

हे किड जमीनित 6–30 सेमी खोलीपर्यत असते. पावसाळयात ते जमीनीच्या वरील भागावर येते. थंडीच्या दिवसात जमीनीत खोलावर जाते मोठे किट रोपनिमध्ये किंवा आसपास असलेल्या झांडाची पाने खात असते. आणी जून महिण्याच्या शेवटच्या हप्यात पुष्कळ प्रमाणात उडत असते. एक हप्यानंतर सफेद ग्रॅब या अळया निघुन रोपांच्या कोवळया मुळावर किवा झाडाच्या सालीवर अथवा कंद खात असतात. अळया मुळाजवळील भागात पसरत असल्यामुळे जमीन पोली करीत असते त्यामुळे नमी कमी होउन रोपे किवा झाडे वाळण्यास सुरूवात होते.

प्रभावित प्रजाती :

सफेद मुसली, अश्वगंधा, सर्पगंधा, केवकंद, लेमनग्रास, पामारोजा सीटोनेला इत्यादि.

नियंत्रण :–

1. रेतील्या मातीत रोपन करू नये ज्यामुळे कीटांची अंडी देण्याचे प्रमान एकदम कमी होउ शकते।
2. प्रकाश पिंज–याच्या मदतीने रात्रीच्या वेळेस मोठे किट एकत्र करून नष्ट करावे.
3. निम, मोहा व करंज याची ढेप 10 किग्रा प्रति क्यारी (10 x1 मीटर) या प्रमाणात मीसळावी.

(2) दीमक (उदळी)

प्रकोप – वर्षभर

उदळी सर्वकिटात नुकसानिचे कीड आहे. हे ज्यास्त करूण झाडांच्या मुळांना किंवा सालीना नुकसान करते. मुळांना खालपासून वरपर्यंत खात असते. हातानी मुळांना हळूच ओढल्यास संपूर्ण मुळ हाति येते. कधि–कधि त्यावर असलेली उदळी सुद्धा वाहेर येते. जेथे दिमक असते त्या ठिकाणि मातीची पतली–पतली परते सुद्धा पाहावयास मीळते.

प्रभावित प्रजाती :

सर्वप्रकारची औषधि आणि सुगन्धित रोपे.

नियंत्रणः–

1. रोपणी कीवा जवळपास शेतातील किटांचे वारूळ पूर्णपने नष्ट करावित. उत्तम प्रतिचे शेण खत पूर्ण सडलेल्या वर्मीकम्पोष्टचा वापर करावा.
2. स्वस्थ रोपांचाच रोपण कार्यात उपयोग करावा निम आणी रूईचे पाने मिसळवूण त्यात थेठासा गुळ टाकून मिश्रण तयार करून वापरावे ते ज्यास्त प्रभावी आणी उपयूक्त ठरते.
3. बजारात हाजर असलेल्या जैविक किटनाशक जसे बायोडर्मा पावडर 5 ग्राम प्रति लीटर मिसळून संक्रमित रोपांवर किवां याच्या आसपास छिड़काव करावा.

(3) कटूवा सुंडी (कटवर्म)

या प्रजातिच्या अळया कच्या रोपण्या रात्रिचे वेळी जमीनीपासूनच खातात आणी दिवसा पानाखाली जमीनिवर असतात्.

प्रभावी प्रजाति :– सफेद मुसली, अश्वगंधा, कालमेघ इत्यादि.

नियंत्रण :–

1. वयस्क कीडे :– प्रकाशपिंज–याच्या मदतीने पकडून नष्ट करावीत (10x 10 x 10 मीटर) आकाराचे खड्डे करून अळया नष्ट कराव्या किंवा प्रभावित रोपावर सुखलेल गवत टाकून दुस–या दिवसी संपूर्ण एकत्र करून जाळावित.
2. जळालेल मोविल तेल 10 ली.प्रति हेक्टर या प्रमाणात अथवा बाजारातील जैविक कीटनाशक (बेशीलस यूरीनोजेनेसिस) 500 कि.ग्रा.प्रति हेक्टर मातीत फुरवावे.

(4) पानेखनारी कीड

या समूहात अनेक प्रकारचे बीटल, फूलपाखरं, पतंगे आणी टिड्डे येतात हे सर्व रोपांची पाने खाउन त्याचे नुकसान करते.

(5) खोड किड (तना भेदक कीट)

या कीटांच्या अळया खोड, फांदया किंवा फळाला छिद्र करून रस पीतात किवां तीथेच अण्डी देतात त्यामुळे ज्यास्तच नुकसान होते. मुष्कदाना खाना–या अळीला बोनवर्म म्हणतात इरायस बीटेला या किटाने जवळपास 70 प्रतिशत रोपांचे नुकसान होते.

नियंत्रण :– खोड फांदया, पाने किंवा फळे खना–या किंटावर खालील प्रकारे उपाय केल्यास नियंत्रण होउ शकते.

1. कडू लिम्बाची पाने, फळे अथवा त्याचा काढ़ा याचे मिश्रण करून फवारणी करूं शकता, किंवा बाजारात मीळनारी निमयुक्त औषधी जसे– निमगार्ड, नीम्लीन, निम्मीसिडीन इत्यादि अचूक औषधाचे 15 दिवसात छिड़काव करावा.
2. ब्यवसायिक जैविक कीटनाशक जसे – यूरीसाईड 0.5 प्रतिशत प्रमाणाचे 30 X 10 बॉयोलय, बॉयोएस्प, बॉयोनिस या न्यूक्लीयर पॉलीहैड्रास बायरसचा छीड़काव करावा.
3. बर्ड पर्चर पक्षाना बसण्याचे ठिकाण टी आकाराचा बांबू किंवा लकड़ी खूंटी बनवून (40–50 प्रति हेक्टर 5 फुट इंच) लावावी, ज्यामुळे पक्षाद्वारे अळया खाउन नुकसान कमी होईल.

(6) रस चूसनारे कीड

या समूहातिल कीडे झाडांचा पानाचा किंवा फांदयाचा रस पिउन झाडांची वाढ खूटविन्यास मदत करते.

मह्यू, एपीस इंडिका

प्रभावित औषधी :– अश्वगंधा, सर्पगंधा, जापानी पौदीना, कालमेघ, बावची, मस्कदाना इत्यादि या किटांचा प्रभाव वरील सर्व प्रकारचा रोपावर आढळते. कीट पानाला चिपकून रसाचे शोषण करते त्यामुळे पाने अकडून नंतर पूर्ण रोप बाळते. हे किट एक चिकना पदार्थ उत्सर्जित करते. त्यामुळे प्रकाश संश्लेषण हळू–हळू बन्द पड़ते. व त्यावर काळयारंगाची बुरशी येते.

रेड कॉटन बग (कापसावरील लाल किड)

डीसडरकस सीगुलेटस हे किट फूलातील, फळातील रस पीते. मुश्कदाण्यात याचा प्रकोप जयास्त दिसून येते. जवळपास 40 प्रतिशत रोपांना नुकसान करते.

थ्रिप्स

हे झालरयुक्त पंख असलेले किट औषधीय रोपांच्या विभिन्न प्रजातिवर आढळून येते. पानांच्या

खालील बाजूस दिसून पडते. कीट पानांच्या बाहेरील बाजूवरील तंतूस खुरचून नसामधून रीसनारा रस चूसतात त्यामुळे पानांत ऐठन त्यार होउन रोपाची वाढ थाम्बन्यास मदत करते.

प्रभावित प्रजातिः– जंगली कांदा, पांढरी मूसळी, अश्वगंधा

नियंत्रण :–

1. 100 ग्राम मिर्ची पावडर एक चम्मच सर्फ किंवा साबून पावडर 10 लीटर पाण्यात मिसळून छीड़काव केल्यास रोग नियंत्रणात येतो.
2. 500 ग्राम तम्बाकूची सुकलेली पाने 10 लीटर पाणयात उकळून त्याचा छीड़काव करावा.
3. 10 ग्राम हींग 10 लीटर कडूनीम्बाच्या पानांच्या घोलात मिसळून छीड़काव करू शकतो.
4. राख चा रोपांपर छीड़काव केल्यास माहू नावांच्या रोगावर नियंत्रण होते.
5. गोमुत्रात दोन भाग अधिक पानी मिसळून फवारणी केल्यास कितीतरी प्रकारचे कीट, जिवाणू नष्ट होउन, उलट रोपांना नाईट्रोजन आणि पोटैश अशा तत्वाची पूर्तता होते.

इतर जीव जंतू

1) उंदिर :– हे अधिकतर झाडांची साल, मुळं किंवा अंकुरीत बी यांना कुरतडून खात असते. त्यामुळे झाड़े वाळतात जगात जवळपास 500 प्रजातिचें उंदिर आहेत त्यात भारतात प्रमुख्याने 20 प्रजाति पैकी, घरेलू उंदिर, पांढरा उंदिर, लहान वन्डीकुट उंदीर, गरबील, वाळवंटी गरबील, मोल, घूस, बासाबरील किंवा झाडावरी उंदीर प्रमुख आहेत.

नियंत्रण :–

1. नर्सरी किंवा शेतातील बिळात पाणी भरल्याने उंदीर पळून जातात.
2. प्रभावित रोपांत टबूर्णीच्या बेळया वाकळ्या काडया टाकल्यास उंदीर त्यांना साप समजून पळून जातात्.

2) मकड़ी (माईट्स) :– हे रोपांच्या पानाचा रस पितात.

प्रभावित वनस्पति :– सर्पगंधा, रतनजोत, नीलगिरी, करंज, जामुन इत्यादि वनस्पतिनां नुकसान करते.

3) नीमेटोडस् (गांडूळ) :– हे कीड अधिकतर रोपांच्या जमीनीतील भागाचे नुकसान करते.

प्रभावित वनस्पति :– सफेद मुसली, अश्वगंधा

नियंत्रण :–

1. निमतेल, सिताफळाच्या बियांचे तेल आणी हिंग मिसळून फवारनी केल्यास नियंत्रण होते.
2. निम खली किंवा बकायन पावडर 25 कि.प्रति.हे. टाकलयास निमडोडस यावर नियंत्रण होते. सवर्धन रोपांना आळी पाळीने लावल्यास प्रभाव कमी होतो.

लेमन गवतावरील किट

कमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	छीमक (ओडोन्टोटरमस प्रजाति)	खास करून ज्या क्षेत्रात ओलित नसते अशा ठिकानी दिमक चा प्रभाव ज्यास्त असतो त्यामुळे रोपें वाळतात्
2.	सफेद गिडार (होलोटाकिया प्रजाति)	व्हाईट ग्राब अळी रोपांची कोवळी मुळ, मुख्य मुळ अथवा साल किंवा कंद खात असते
3.	खोड किड (टाईपोराइजा इसर्टुलस प्रजाति)	अळी फांदया किंवा खोडाच्या आत छीद्र करून शिरकाव करते ज्यामुळे त्यात पोकळी निर्माण होउन फांदी किंवा खोड सम्पूर्ण वाळते
4.	शूट प्लाई (ओरीकोलिया ओराइजी)	सुंडी फांदीच्या आत सालील कुरतडुन प्रवेश करते त्यामुळे रोपांची वाढ खूंटते
5.	पांढरी माशी	हे किट लेमनग्रास या रोपांना फेब्रूवारी – में महिन्यापर्यंत रोपांच्या पानांच्या आतील भागात राहून त्याचा रस चूसते त्यामुळे रोपांची वाढ खुंटलया जाते

सिट्रोनेला वरील किड

कमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	फांदीला भेदनारा किड़ा	या किटांच्या अळया फांदीच्या कोवळया भागातून फांदीत प्रवेश करते. त्यामुळे फांदीला पोकळी निर्माण होउन बाळन्यास मदत होते व वाढ थांबविते. या रोपांच्या शेतात रोगच्या प्रकोपामुळे रोपांची पूर्ण पाने वाळलेली दिसते. पानांना जवळून पाहिल्यास बुध्याजवळील भाग सडलेल दिसतो. म्हनून त्याला डेडहार्ट सुद्धा म्हटल्याजाते या रोगांच्या प्रकोप साधारण अप्रैल–जून महीन्यात अधिक दिशून येतो.

कलिहारी रोपांवरील किट

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	पाने खानारे किड (ओलीटेला ग्लोरीओसा)	अळी फार वेगांने रोपांच्या पानांचे नुकसान करते त्याच्या प्रकोपाने पानाल नुसती जाळी शिल्लक राहते

जपानी फुदिण्यावरील किड

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	पने खानारे किट (टाईक्लोशिया प्रजाति)	अळी फार बेगाने पानांच्ये नुकसान करते त्याच्या प्रकोपाने पानात नुसती जाळी दिसते
2.	रोयेदार शुण्डी	ज्या रोपांवर या किटांचा प्रकोप असते. त्याचे पाने पांढरी जाळीदार दिसते. त्यामुळे रोंपांचे नुकसान तर होतेच पण वाढ सुद्वा खुंटते
3.	सेमीलूनर शुण्डी	हे किट पानांल सरळ कापून खाते, पानांत छीद्र सुद्धा तयार करते त्याचा प्रकोप मेन्थाच्या दुस–या फसलीच्या वेळेस दिसून येते.
4.	माहू (ऐपीस इंडीका)	यांचा प्रकोप साधारण फब्रुवारी–मार्च माहिन्यात दिसून येते
5.	पनांला गोल गुन्डारनारे किट	खास करून सूर्यप्रकाशात हे किट ज्यास्त प्रभावशील असते मेन्थाच्या शेतीला हे फारच नुकसान करते. साधारण आगस्त–सप्तेंवर या महिन्यात ज्यास्त प्रभाव असतो.
6.	दिमक (ओडोन्टोटरमल ओबेसस)	हे किड रोपांच्या जमीनिला लागलेल्या फांदयांचा शेलूलोज खाते, त्यामुळे रोप वाळलेल दिसते साधारण ज्याभागात पाण्याची कमी असते, किंवा कच्चे शेण वापरल्या जाते अशा ठिकानी रोगांचा प्रकोप ज्यास्त दिसतो.
7.	मुळांची घुण	या किटांचा कारवा मुळांना खात असते त्यामुळे रोप वाळलेली दिसतात अथवा त्यांची वाढ थांवते
8.	जाळीदार किट	हे कीड रोपांची कोवळी पानांचा रस पिते त्यामुळे रोप जळल्यासारखी दिसतात्
9.	काळा कीडा	हे किड मेन्थाच्या पानांल आणी कोवळया फादयांना नुकसान करते

निसोत (ओपरकुलिना टरपेन्थम्) वरील किड

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	पाने खानारे किट (हेल्सीस्टोग्रामा प्रजाति)	अळया रोपांची पाने खातात्

मुस्कदान्यावरील किड

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	रस चूसनारे किड डिसडरकस सींगुलेटस्	हे किड फळांचा रस चूसते
2.	हरा बग (नेजेरा वीरीडूला)	जातक आणी वयस्क फळांचा, रस चूसते
3.	पाने खानारे किड (ऐनोमिस फलावा)	हिरव्या रंगाच्या अळया पानांचे तुकडे–तुकडे करून खातात्
4.	पान गुडारनारे किड हरा बग (सायलोटा डेरोगेटा)	हीरव्या रंगाच्या अळया पानाला गुंडाळून खातात्
5.	फूल फांदयांना छेदनारा किड (इरीयास विटेला)	मुस्कदान्याच्या फांदया, फुले, फळे यांना छीद्र करून नुकसान करते

बिरहटा वरील किड

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	पाने खानारे किट (सेलेपाडोकिलीस)	कीड जवळ–जवळ 13 मिमी लांब पिवळसर दिसनारी केशयुक्त अळी पनांना पूर्णपनें खाते
2.	फांदयानां छेदनारे किड (यूझोफेरा स्पेसिन)	दिसायला हलक्या काळया रंगाच्या अळया कोवळया फांदयाना छीद्रकरून आत पोकळी निर्माण करते. त्यामुळे फांदया वाळतात व रोपांची वाढ खूंटते
3.	अंतमुळावरील पाने खनारे किड (डायक्रोमीया साजीटा)	काळया रंगाच्या अळया कोवळया पानाना खातात
4.	जंगली कांदयावरील पाने खानारे किड (बीथ्रास किनी)	काळया रंगाच्या अळया पानांना खातात याचा प्रकोप जुलै ते आक्टोबर पर्यंत होतो.
5.	थ्रीप्स थ्रीप्स टबैक	हल्के पिवळसर रंगाचे 9 मिमी पर्यन्त लां दिसनारे किड पानांच्या बाहेरील भागाला खुरचडून कोशिकातून रिसनारा रस पीतात त्यामुळे रोपांची वाढ खूंटते.

बावची वरील किड

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	पाने खानारे किड (पोपलियो डेमोलियस) (स्टोमोप्टेरस मोरीसेला)	अळया पाने खातात् भु–या लाल रंगाच्या अळया कोमल पाने खातात्
2.	सर्प गंधावरील किट (माईटस यूरेटयानिकस ओरीअन्टालिस)	हलक्या पिवळया रंगाच्या अळया फांदया आणी पानांचा रस पितात्

आवळयावरील किड

क्रमांक	किटाचे वैज्ञानिक नांव	किटाद्वारे होनारे नुकसान
1.	फांदयांना फोंडा अथवा गॉल बनविनारी किट (बेटोउसा स्टायलोफोरा)	काळया रंगाच्या अळया झाडांचा कोवळया फांदीच्या सालीला छोटे–छोटे छिद्र निर्माण करते. त्यातील रस पिउन सालीवरील छिद्राच्या ठिकाणी सुजन येउन गाठ आल्यासारखी दिसते.
2.	साल खानारे किड (इन्डारवेला क्वाडीनोटेरा)	अळी कोवळया फांदीला नाली किंवा सुरंग बनऊन त्याची साल खाते.
3.	पाने खानारे किड (अकिया जनाटा) (सेलपा सेलटीस) (पैपिलियो डिमोलिअस)	भु–या किंवा काळया रंगांच्या अळया रोपांच्या कोवळया पानांना आतून खात असते. हलक्या पिवळया रंगाच्या केसाळ अळया पानांला पूर्ण खात असते. आणि बादामी रंगाच्या अळया रोपांची कोवळी पाने खातात.
4.	रस चूसनारे किड माहू एफीड (स्पोउटेडेरिया सूटा) (स्कूटेलेना नोविलिन)	रोपावरील किड पानांला चीपकून त्याचा रस पिते. याावरील किड फांद्याचा रस चूसते.
5.	दिमक	मुळें अथवा सालीला नुकसान करते.
6.	फळांना छीद्र करनारे किड (करकूलियो स्पेशीज)	हलक्या पांढ–या रंगाच्या अळया फळांना छीद्र करून रस पिऊन नुकसान करते.

जैविक नियंत्रण

जैविक किड प्रबन्धन म्हणजे जैविक उत्पादन फंफूद, जिवाणु, मित्रकीट, फुलपाखरं यांच्या समन्वयाबिना रासायनिक फसलिवरील नुकसानकारक किटांवर नियंत्रण. याचे परिणाम स्थाई स्वरूपाचे असते. हाच मोठा फायदा. याचे विशेष नियंत्रण क्षेत्र स्थापित झाल्यावर कार्य करीत असते. हे कमी खर्चाचे आणी सुरळीत असते. याच्या नियंत्रणाने फसलिवर नुकसान कारक अवशेष राहण्याची संभावना समाप्त होउन ते किड पूर्णरूपाणे नष्ट होते. कीट किंवा बीमारी विरूद्व फसलीत प्रतिरोधक क्षमतेचा विकास होतो. जैविक कीट बिमारीवर वेगवेगळया प्रक्रियाद्वारे प्रबन्धन केल्या जाते.

1. **सस्य क्रियाएंः**– ग्रीष्म ऋतुत् खोलवर नांगरनी करून धू–यावरील कचरा एकत्र करून खत तयार करने फसल चक्राचा उपयोग करून स्वस्थ आणी शुद्व बियांचा वापर करून प्रमाणात् खताचा वापर करून ओळीने बियांची पेरणी, प्रतिरोधी बीयांनाचा वांपर फसलिचा जमीनिस्तरावर कटाई करून उरलेला भाग जाळणे, अंतर्वर्ती फसले निवडने कारण अशा प्रकारच्या फसलिवरून होना–या किटांला दुस–या फसलिवर जावे लागेल.
2. **यांत्रीक कार्यः**– प्रकाश प्रपंच फरोमोन टैप, पक्षाना आकर्शित करते शेतातील किटांचे अण्डे आणी अळया एकत्र करून नष्ट करणे. किटांनी ग्रसित असलेले रोपें नष्ट करने.
3. **जैविक नियंत्रण** :– जैविक नियंत्रणात परभक्षी व परजीवीना वाहेरून आणून शेतात सोडावें आणी त्याना संरक्षण देने नुकसानकारक आणी मित्र किटांचे अनुपातात नियंत्रण ठेवणे, आणी रोप निर्मीत रसायनाची आवश्यकता पडल्यास वापर करणे इत्यादि प्रक्रिया सम्मिलित आहेत. ट्रायकोडरमा वेसिलस युरैजैसिस किवा दूस–या उपयोगी बैक्टीरियाचा आणी ॲस्परजीलस फंफूद यांच्या उपयोगाने प्रभावी कीट नियंत्रण होते. परभक्षीय विभिन्न प्रकारच्या मकंडीया, कोकसीनैरिड इत्यादि प्रमुख आहेत. ज्या स्वताचा शिकार स्वतः करते. परजीवी कीट नुकसानकारक किटांच्या अंणात शमनि किंवा शंखीत आपले अंडे

टाकून नष्ट करते. यात ट्रायकोगामा इकनिमोन प्रजाति इत्यादि मुख्य आहेत.

(1) लिम्बाचे किटनाशक :– नैसर्गिक किट नियंत्रणात कडू लिम्बाचे झाड प्रमुख आहे. हे 200 प्रकारच्या विभिन्न किटांवर नियंत्रण करते. याच्या बियापासून व पानापासून अजोडीरैक्ओीन नावाचे रसायन प्राप्त होते. ते शक्तिशाली प्रतिकारक उत्पन्न आहे. याच्या प्रयोगाने किड एकदम मरत नसते. पन रोपांना नुकसान करण्याची क्षमता प्रभावित करते. जसे किटांत फसल खाण्याची नापसंदी निर्माण होत. अंडे देण्याची शक्ति कमी होते अशा प्रकारे किटांचे जिवनचक्र अस्त व्यस्त होते. लिम्वाचे मुख्य उत्पादन इजागार्ड, बेनगार्ड, निर्माक इत्याद. दानेदार रूपात 15 जी नावाचे उत्पन्न प्रचलित आहे.

1. कडूनिम फळगाभ्याचा अर्कः– 50 ग्राम फळाचा गाभा चूरून, एका पतल्या कापडात बांधून रात्रभर एक लिटर पाण्यात ठेवावा, सकाळी कपड़ा दाबून पूर्ण रसांचा निचोड करावा ते पाणी गाळून ध्यावे, त्यात एक चुटकी साबून पावडर मिसळावे रोपांवर छिड़काव केल्यास पानांना चिक्टून राहते. याचे घोल सफेद मक्खी आणी छिद्र करनारे किट निरूपचार होतात्. (तीन ते आठ महिने जूने फळ ज्यास्त फायदेमंद असतात).
2. कडूलिम्बाच्या पानांचा अर्क :– 5 किलो अर्क तयार करण्यास एक कि.ग्रा पाने पाहिजेत. पानांला रात्रभर पाण्यात भिजवून ठेवावे. सकाळी पानाला पाण्यात चुरूण नंतर गाळून ध्यावे व त्यात एक चुटकी साबून पावडर मिसळावे याचा उपयोग पाने खानारे किट कैटरपीलर आणी टीडयावर सुद्धा करता येतो.
3. कडू निम्वाच्या बियांचे तेल :– एक लिटर अर्क काढन्यास एक लिटर पाण्यात 30 मिली (6 फुल चम्मच) निम तेल अर्कात मिसळून घोल त्वरीत वापरावे नाहीतर तेल पाण्यावर तरंगून अनुपयोगी होईल.
4. कडुलिम्बाच्या खलिचा अर्क :– फळातून तेल काढल्यानंतर फळांचा उरलेला भाग (खली) याचा सुद्धा उपयोग किटांना नष्ट करण्याकरीता होतो. 100 ग्राम खलिपासून एक लिटर अर्क बनतो. निम्बाच्या खलील पातळ कपडयात बांधून एक लिटर पाण्यात रात्रभर भिजवून ठेवावे सकाळी पाण्यात गाळून ध्यावे यात चुटकीभरूण साबून पावडर मिसळून ध्यावे. घोलांचा सुर्यास्तानंतर छीडकाव केल्यास ज्यास्त फायदा होतो.

(2) करंज चे किटनाशकः– करंज चा प्रयोग औषधाच्या अथवा किटनाशाकाच्या रूपात केल्या जातो.

1. पानांचा अर्क :– एक किलो पानात 5 लीटर पानी मिसळून रात्रभर भीजत ठेवावे सकाले पानांना पाण्यात चोळून पाणी गाळूण ध्यावे, त्यात एक चम्मच साबुन पावडर मिसळून याचा छिडकाव करावे. एक एकर शेतात 20 किलो पानांचा रस छीपडावा यामुळे रोपावरील पाने खाणा–या किटांचा नाश होतो.
2. बियांचा अर्क (रस) :– 50 ग्राम बियाना कुटुन एका पातळ कपडयात बांधून एक लिटर पाण्यात रात्रभर ठेवावे. सकाळी बांधलेली पोटली चोळून ते पाणि गाळून ध्यावे त्यात एक चम्मच साबुन पावडर मिसळून एक एकर शेतात 10 किलो शिंपडावे.
3. करंज तेल :– 30 मिली (3 बड़े चम्मच) करंज तेल एक लिटर पाण्यात मिसळून त्यात एक चम्मच साबुन पावडर मिसळून तुरंत फवारावे. एक एकर शेतात 3 लिटर तेल पर्याप्त होइल.

(3) फंफूदापासून तयार केलेले किटनाशकः– ल्यूबेरिया बेसीयांना नावाच्या फंफूदापासून एक प्रभावी जैविक किटनाशक तयार केल्या जाते. हे किटनाशक आर्मीवर्म, हीरक पृष्ठपतंगा, सुण्डी अवस्था, सफेदमाशी, माडू तेला, हरे भुरे हॉपर, स्केल किट, मिलीबग, धून संरंगी कीडा, तना छेदक कटुआ सुंडी इत्यादि प्रकारच्या किट रोगापासून संरक्षण करते. फंफूदाच्या प्रकोपाने सुण्डीवर सफेद फंफूद दिसून येते. आणी नाहीशेपन होते. अशा जैविक कीटनासकाचा प्रयोग फवारणी करून अथवा जमींनीत मिसळून सुद्धा केल्या जातो. 750 लिटर पाण्यात 2 लिटर किटनाशक मिसळून फवारणी करू

शकतो. किंवा एवढयाच प्रमानात जमिनित सुद्धा मिसळून वापरया जाते.

(4) वायरस चे किटनाशकः– न्यूक्लियर पोलीहेड्रोसिस वायरस पुश्कळ प्रकारच्या किटांना ग्रसित करून मारते. जेव्हा कीट या वायरसचे प्राशन करते. तेव्हा शरीरात हे वायरस आपला असर दाखविन्यास सुरूआत करते हे किटांच्या शरीराला गळवून टाकते. हळू हळू किट मरते. एन.पी.वि.ने ग्रसित सुण्ड्या अक्सर पानावर उल्टी लटकलेली दिसते. स्वतःचा रंग सोडून मटमैली अथवा भुरकट दिसते.

याचे मुख्य उत्पादन हेलियोविट व स्पाडोविर आहे. हेलिकोवरपा स्टेन च्या प्रांरभिक अवश्थेत जर एन. पी.वी. चा छीड़काव 250 मिली प्रति हे. 700 ते 800 लिटर पाण्यात केल्यास प्रभावी ठरते. या शिवाय अजून एक वायरस जो कि जैविक नियंत्रणात फार उपयोगी आहे. तो आहे **बहुलो** वायरस याचा असर किटाने रोप, पानांवर छीड़काव केल्यास खान्याने होतो.

बैक्टीरिया वेसिलस यूरेजिनेसिस (बीटी) पासून किट नियंत्रण

वेसिलस यूरेजिनेसिस एक असा बैक्टीरिया आहे ज्याने सध्यपरस्थीतित पुष्कळ किट रोगावर नियंत्रण ठलून महत्ता सार्थक केली. हे कमित कमी 150 प्रकारच्या किट प्रजातीच्या रोगांवर विशेष करून लैपीडेप्टोरस सुण्डी साठी मारक क्षमता ठेवते. हे सुण्डीयाला नियंत्रणात ठेवन्यास प्रभावी आहे. बीटी चा फवारा पानांवर खालच्या बाजूने केल्या जाते. कारण खालच्या भागात छीड़काव केल्यास याचा प्रभाव बाढतो. याचा एक कि. प्रति हेक्टयरच्या मापात छीड़काव केल्या जातो. ज्यामुळे सुण्डी आणी रस पिना–या किटापासून फसलिची सुरक्षा होत असते. सोवतच मित्रकिट सुद्धा सुरक्षीत राहते.

जैविक किटनाशक बनविण्याचे नुरख्ते

गौमूत्रः– गाईच्या मुत्रात 33 प्रकारचे तत्व आढळून येते. त्याच तत्वामुळे वनस्पति वर येणा–या किट फंफूद आणी विषाणु या रोगावर नियंत्रण होते. गाईचा मूत्रात असलेल गंधक किटनाशकाचे कार्य करते. तर यातील नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, लोहा, चूना सोडियम इत्यादि तत्व वनस्पतिला निरोगी आणी सशक्त बनविते. मूत्रात आढळणारे मैंग्नीज आणी कोर्बोनिक एसिड किटनाशक आणी पुनरूत्पादन रोधक कार्य करते. यातील तांबे सुद्धा प्रमुख कीटनाशकाचे कार्य करते. गोमूत्रा पासून किटनाशक तयार करण्याचे पूष्कळ नुख्ते प्रचलनात आहे. त्यापैकि प्रमुख खालील प्रकारे आहेत.

150 ते 200 मिली गोमूत्र पाण्यात मिसळून स्प्रेयर पंपाच्या मदतिने रोपांवर पेरणीच्या 15 दिवसानंतर प्रत्येकी 10 दिवसांच्या अंतराने छीड़काव केल्यास रोपात रोगांची किंवा किटांची प्रतिरोधात्मक क्षमता विकसीत होते.

वर्मीवाशः– प्राकृतिक आवस्थेत सडले कुजले कार्बोनिक पदार्थाचे गांडूळाद्वारे सेवन केल्या जाते. त्यानंतर त्याचे जीवन चक्र किवां पालन पोषण म्हणून रोपात निस्चीत मात्रात द्रव्यरूपी आवश्यक तत्व मिळविल्या जाते. हे द्रवरूपी तत्व म्हणजे वर्मीवाश उत्पाद आहे. वमीकलचर सोबत लिम्बाची पाने आणी गोमूत्र निच्छीत प्रमानांत मिसळून विशिष्ट प्रकारच्या प्रक्रियेने तयार केलेल्या डब्यात नैसर्गिक प्रकारे गाळून बायोनिश नाबाचे द्रव्य हळू हळू निर्धारित दिशेने उचित वेळी हमा केल्या जाते. असे एकत्र केलेले द्रव्यरूपी पदार्थ रोपांच्या वाढीसाठी उपयुक्त दिसून आले. बायोनिश मध्ये मुख्य, नत्रजन, फॉस्फोरस, पौटैश, मैग्नीशियम, बोरान इत्यादि दिसून येते. हे एक सौ प्रतिशत पर्यावरणासाठी पोषक प्राकृतिक कार्बोनिक निर्मित द्रव्य आहे. प्राकृतिक निम आधारित पोषक जैविक किटनाशक रोपांच्या वाढीसाठी सुद्धा उत्तम प्रकारे उपयुक्त आहे. हे औषधि रोपात बागेत, बागीच्यात, भाजीपाल्यात किंवा इतर फसलीत रोपनित किंवा रोपवनात उत्कृष्ट आहे. 500 ली.प्रति हेक्टेयरच्या अनुपातानुसार फवारनी केल्यास उपयूक्त ठरते.

पांढरी अळी (व्हाईट ग्रब्स) वन रोपवाटिकाचा एक महत्वपूर्ण कीटक

संजय पौनीकर व डॉ. नितिन कुलकर्णी

वन कीट विज्ञान प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

पांढरी अळी (व्हाईट ग्रब्स-White Grubs) हे वन रोपवाटिका (Forest Nurseries),वनांतले विविध प्रकांरचा नैसर्गिक वृक्षांना (Natural Forests), वन रोपण (Forest Plantations), रोपण व शेती पिक (Plantations and Agricultural Crops), आणि बागायतीला (Horticultural Crops) नुकसान करणारा एक उपद्रवी व महत्वपूर्ण कीटक़ आहे. व्हाईट ग्रब्स कीट गणातील कोलोप्टेरा (Order-Coleoptera) व स्कॉराबिडिए (Family-Scarabaeidae) वंशातील एक प्रमुख प्रजाती आहे. संपूर्ण जगात हया वंशातील 3000 प्रजाती आढळतात. वन रोपवाटिका मधले (सागावन, बांम्बू, साल, अर्जुन, शिशू, चिंच व अन्य), वनांतले विविध प्रकांरचा वृक्षांना, रोपण व शेती पिक (बादाम, काजू, नारियल, भूईमूग,गहु, तांदुळ, ऊस, चना, सोंयाबीन, कापुस, सुर्यफुल, विविध भाजीपाला व अन्य), बागायतीला (सफरचंद, आंबा, द्राक्षे,संत्रा व अन्य), लॉन आणि गवत मैदानांना फारच नुकसान करतात. आपल्या देशात पांढरी अळी सगळया पिकांचा 40 ते 80 टक्कया पर्यत नुकसान करतात. व्हाईट ग्रब्स हे मातीत राहणारे आणि वृक्षांचे मुळ खाणारे अवयस्क स्कॉरब बीटल (Scarab Beetles) आहेत. मुळ खात असल्यामुळे यांना मुळ खाणारे ग्रब्स (Root Grubs) पण म्हणतात. पण हयाला मे–जुन बीटल (May-June Beetle) किंवा चाफर बीटल (Chafer-Beetle) म्हणून पण ओळखल जाते. वयस्क बीटल (भृंग) रात्रीचर असतात. अवयस्क व वयस्क स्कॉरब बीटल दोन्ही, विविध प्रकारांची झाडांना, वन पिक, रोपण व शेती पिक आणि बागायतीला मोठया प्रमाणात नुकसान करतात व त्यामुळे फार मोठी आर्थिक हानि पण होते. व्हाईट ग्रब्स मुळे होणा–या हानि मुळे हा राष्ट्रीय पेस्ट (National Pest) म्हणुन संबोधला जातो.

भारतीय महासंघात (Indian Sub-continent) व्हाईट ग्रब्सचा प्रजातींची 50 पेक्षा जास्त कीटक सापडतात, हयापैकी 14 प्रजाती आपल्या देशात फारच महत्वांचा आहे. हया किटकाचा प्रादुर्भाव विविध प्रकारांचा वन व शेती पिकांवर फार मोठया प्रमाणात आढळत असल्यामुळे हा एक भारताचा महत्वपूर्ण व उपद्रवी कीट म्हणून ओळखला जातो. व्हाईट ग्रब्स विविध प्रकारचा प्रजाती, *होलोट्राइकिया* प्रजाती (*Holotrichia* spp.), *पॉयलोगॅन्थस* प्रजाती (*Phyllognathus* spp.), *एपोगोनिया* प्रजाती (*Apogonia* spp.), *ब्राहमिना* प्रजाती (*Brahmina* spp.), *ल्युकोफोलिस* प्रजाती (*Leucopholis* spp.), *अनोमलिया* प्रजाती (*Anomala* spp.), *मिलोलोन्था* प्रजाती (*Melolontha spp.*), *सायजोनिका* प्रजाती, (*Schizonycha* spp), *मालडेरा* प्रजाती (*Maldera* spp.) भारतात आढळतात. यापैकी *होलोट्राइकिया* ही एक व्हाईट ग्रब्स ची महत्वाची प्रजाती समजली जाते. भारताचा विभिन्न राज्यात जसे मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्, छत्तीसगढ, राजस्थान, पंजाब, कर्नाटक, जम्मू काश्मीर, उत्तर प्रदेश, तामिळनाडु , केरल, आसाम, हिमाचल प्रदेश व आंध्रप्रदेश मध्ये व्हाईट ग्रब्सचा विविध प्रकारची *होलोट्राइकिया* चा जाती आढळतात. हया पैकी *होलोट्राइकिया सेरेटा* (*H.serrata*), *होलोट्राइकिया इनसुल्यारिस* (*H.insularis*), *होलोट्राइकिया लॉगिपेनिस* (*H.longipennis*), *होलोट्राइकिया कॉन्सुगोनिया* (*H.consanguinea*), *होलोट्राइकिया रस्टिका* (*H.rustica*), *होलोट्राइकिया मुसिडा* (*H.mucida*), *होलोट्राइकिया रेनाउन्ड़ी* (*H. reynaudi*), *होलोट्राइकिया फिस्सा* (*H.fissa*), *होलोट्राइकिया प्राब्लेमेटिका*

(*H.problematica*) आणि *होलोट्राइकिया निलगेरिया* (*H.nilegeria*) सारखी प्रजाती विविध रांज्यामध्ये विविध प्रकारांची वन रोपवाटिकांचा रोपांना व शेती पिक व इतर पिकांना नुकसान करतांना आढळतात.

मध्यभारताचा मध्यप्रदेश, महाराष्ट् व छत्तीसगढ या रांज्याचा वन विभाग (Forest Departments) व वन विकास महामंडळाच्या (Forest Development Corporation) वन रोपवाटिका मध्ये विविध व्हाईट ग्रब्स प्रजातीचां फार मोठया प्रमाणात प्रार्दुभाव आढळतो. या राज्यात हजारों बेड मधे सागवानचे (*Tectona grandis*) फार मोठे वन पिक (Forestry Crops) वन रोपण (Forest Plantations) करण्यासाठी प्रत्येक वर्षी घेतले जाते. व्हाईट ग्रब्स बेड मध्ये रोपल्या गेलेल्या रोपांना मुळांपासुन खाऊन सागवानचे फार मोठया प्रमाणात नुकसान करतात. व्हाईट ग्रब्सची अळी बेड मध्ये लावले गेलेले सागवनचा रोपांचा खालून मुळांना खाऊन कमजोर करतात. अळी आपल्या मजबूत जबडयांनी मुळांना खालुन कापून टाकते त्यामुळे रोप सुखून गळून जातात व शेवटी मरतात. ही अळी बेडांचा रोपांना फारच मोठया प्रमाणात नुकसान करते. हया अळी मुळे वन रोपवाटिकेला फार मोठी वित्तहानि सहन करावी लागते व साग्याचे जड़ी चे उत्पन्न फारच कमी होत असल्यामुळे वन रोपणांसाठी ठेवले गेलेले ध्येय (टार्गेट) पूर्ण होत नाही.

आतांच महाराष्ट्रांचा नागपुर जिल्हयांत महाराष्ट्र वन विकास महामंडळचा रामड़ोंगरी वन रोपवाटिका मध्ये तीन प्रकारचा व्हाईट ग्रब्सच्या *होलोट्राइकिया रस्टिका* (*H.rustica*), *होलोट्राइकिया मूसीड़ा* (*H.mucida*) व *सायजोनिका रूफिकोलिस* (*Schizonycha ruficollis*) या जातीनीं पहिल्यादांच सागवनचा मुळांना नुकसान करतांना आढळली. जगात पहिल्यांदाच या जातीचे व्हाईट ग्रब्सचा प्राद्रुर्भाव सागवनचा रोपांवर आढळला. हया अळी ने पूर्णचा पूर्ण सागाचे बेडावरील रोपे उध्दवस्त करून टाकले होते.

व्हाईट ग्रब्स आपले जीवन चक्र जमिनीतच पूर्ण करते हया किटकानां राहण्यास व वाढण्यास रेताळ जमिन फार योग्य असते. वयस्क बीटल मानसुनचा अगोदर किंवा मानसुनचा नंतर मे किंवा जुन महिन्यांत एकदम आंर्द्रता वाढल्यामुळे जमिनीतुन बाहेर येतात आणि जवळपास विविध प्रकारची वृक्ष जसे बोर, खैर, नीम, पळस, बाभूळ, जांभूळ व सहजनचे पाने खातात. जवळपासचां विविध प्रकारची वृक्षांवर किंवा ज्या वृक्षांची पाने खातात त्या वृक्षांवर वयस्क नर व मादी मिलन करतात. मादी मिलनांचा नंतर तीन दिवसांनी साबुदान्या सारखी पाढंरी 20 ते 30 अंडी जमिनीत घालते नंतर 7–10 दिवसांनी अंडयातून लहान लहान पाढं–या अळया बाहेर येतात व रोंपाच्या मुळांना खातात. ही अळी इंग्रजीचा 'सी' आकारा सारखी दिसते. व्हाईट ग्रब्सचा अळीला वयस्क होण्यास सुमारे 82 ते 113 दिंवसांचा कालावधी लागते. पाढंरी अळी आपल्या सभोवती एक गोलाकार चेम्बर बनविते व वर किंवा आडवी सरकत जात विविध प्रकारांचा मुळांना खाते. व्हाईट ग्रब्सची अळी जुलै ते मध्य ऑक्टोबर पर्यत मुळांना खात सक्रिय असते. नोव्हेंबर येता येता अळी कोशा मध्ये परिवर्तित होते. अळी कोशा मध्ये परिवर्तित होण्या अगोदर 40 ते 70 से.मी. किंवा या पेक्षा जास्त जमिनीचा आत जावून योग्य ओलावा मिळालेली जमिनीत राहतात. कोशाचां एकूण सरासरी कालावधी 14–15 दिवसांचा असतो. कोशा मधून बाहेर पडलेले वयस्क बीटल (भृंग) पांढरे रंगाचे असतात व नंतर हळुहळु त्यांचा रंग धूसर होते व तसेच न हालचाल करता जमिनीत पडून राहतात. मे–जुन महिन्यात जेव्हा पहिला पाऊस पडतो व वातावरणात एकदम आंर्द्रता वाढते तेव्हा हे वयस्क भृंग जमिनीतुन बाहेर पडतात व जवळपासचा जा झाडाचे पान खातात त्या झाडावर बसतात व नर मादी मिलन करून पुन्हा एकदा आपले जीवन चक्र सुरू करतात. व्हाईट ग्रब्स जीवन चक्र पूर्ण होण्यास सरासरी एकूण 122 दिवस लागतात व वर्ष भरात फक्त एकच पिढी तयार होते.

व्हाईट ग्रब्स हे वन रोपवाटिका मधले रोपांचा व इतर शेत पिकांचा मुळांना खात असल्यामुळे रोपांचे मुळ कमजोर होऊन गळतात, पोषक तत्व न मिळालेमुळे अवशोषण होते आणि मुळांची वाढ खुंटते व शेवटी मुळ कमजोर होऊन मरतात आणि पिकांच फार मोठया

प्रमाणात नुकसान होऊन आर्थिक हानि होते. हयामुळे या किटाचे नियंत्रण करणे अति आवश्यक आहे.

व्हाईट ग्रब्सला नियंत्रित करण्यास इतर कीटक पेक्षा फारच कठिण कीट आहे. एकल पध्दती नियंत्रित ने हा कीट आटोक्यात येत नाही. एकात्मिक कीट नियंत्रण पध्दती (Integrated Pest Management) ने या कीटाला नियंत्रित करू शकता येते. ज्या मध्ये रासायनिक कीटकनाशक आणि काही कवक, परजीवी, जीवाणू, विषाणू व कृमी हे प्रमुख आहेत.

आधी बेडावर पांढरी अळीचा प्रादुर्भाव दिसल्यावर बेडा मध्ये कीटकनाशकाचां वापर करण्यात येत होता व हाच एक पर्याय होता पण नंतर संशोधनाने असे कडून आले की, वयस्क भृंगाला रासायनिक कीटकनाशका द्वारे आटोक्यात आणता येते. मोनोकोटॉफास (0.05%) किंवा डाइमोथोएट (0.1%) ची फवारणी भृंग ज्या वृक्षाचे पान खातात त्या वृक्षावर फवारले की रात्री भृंग पाने खातात व खाली पडून मरतात. वन रोपवाटिका किंवा शेताची जमीन खुप खाल पर्यंत नांगरणी व बखरणी करून खालची माती वर येईल त्याच बरोबर व्हाईट ग्रब्सला पण वर येतात अळी खाणारे पक्षी याला खातात किंवा अळीला मातीचा (रॉकेल) तेलात टाकल्यावर ते मरतात व अळीची संख्या आटोक्यात राहते. वन रोपवाटिकाचे बेड तयार करते वेळी 10 टक्के फोरेट (10% Phorate) आणि मिथिल पॉराथियान (Methyl Parathion) @ 250g/ bed (12m x 1.25 m) हया कीटकनाशकांचे मिश्रण मिसळून घावे त्यामुळे व्हाईट ग्रब्सलाचा प्रादुर्भाव होण्याची शक्यता कमी असते किंवा अळीचा प्रादुर्भाव होत नाही.

1 वनरोपवाटिका मधले बेड

2 पांढरी अळी ने खाल्लेले साग्याचे रोप

3 गळून पडलेले साग्याचे रोप

4 सी आकाराची पांढरी अळी

International Seed Testing Association (ISTA): Position, experience and activities in respect to seed health

Naseer Mohammad, Hari Om Saxena and Tresa Hamalton

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

The International Seed Testing Association was founded in 1924, during the 4th International Seed Testing Congress held in Cambridge, United Kingdom, with the aim to develop and publish standard procedures in the field of seed testing. Currently its membership consists of about 176 member laboratories, 48 personal members and 22 associate members, from 74 countries around the world. ISTA is inextricably linked with the history of seed testing. With member laboratories in over 70 countries worldwide, ISTA membership is truly a global network. ISTA is independent and acts free from economic interest and political influence; it is unbiased, objective and fair. Furthermore, the hitherto unsurpassed expertise of ISTA is based on the non-profit, cooperation of the international community of approximately 400 experienced, competent and energetic seed scientists and analysts.

VISION

'Uniformity in Seed Testing world wide'

ISTA is committed to developing, adopting and publishing standard procedures for sampling and testing seeds, and promoting uniform application of these procedures for evaluation of seeds moving in international trade.

MISSION

ISTA achieves its vision by producing internationally agreed rules for seed sampling and testing, accrediting laboratories, promoting research and providing international seed analysis certificates, training and dissemination of knowledge in seed science and technology to facilitate seed trading nationally and internationally.

OBJECTIVES OF THE ASSOCIATION

(a) The primary purpose of the Association is to develop, adopt and publish standard procedures for sampling and testing seeds, and to promote uniform application of these procedures for evaluation of seeds moving in international trade.

(b) The secondary purposes of the Association are actively to promote research in all areas of seed science and technology, including sampling, testing, storing, processing, and

distributing seeds, to encourage variety (cultivar) certification, to participate in conferences and training courses aimed at furthering these objectives, and to establish and maintain liaison with other organizations having common or related interests in seed.

WHAT DOES ISTA DO?

As an authority in seed science and technology, ISTA continues its role as the developer of seed testing methods. Its major achievements and services provided are briefly the following:

1. The ISTA International Rules for Seed Testing, guaranteeing worldwide annually updated, harmonized, uniform, seed testing methods.
2. The ISTA Accreditation Programme including Accreditation Standard, Proficiency Testing Programme and Auditing Programme guaranteeing worldwide harmonized, uniform, seed testing.
3. The issuing of the ISTA International Seed Lot Certificates by officially independent ISTA accredited and authorized laboratories.
4. The promotion of research, training, publishing and information in all areas of seed science and technology and cooperation with related organizations such as ISF, OECD, UPOV and many others.

BENEFITS ARISING FROM ISTA'S WORK

1. Provides the basis for ensuring the trade of quality seed by developing standard seed testing methods.
2. Provides a platform for research and cooperation between seed scientists worldwide.
3. Promotes research and provides the opportunity for publishing and distributing of the technological data.
4. Guarantees worldwide harmonized, uniform seed testing through the Accreditation, Proficiency Test and Auditing Programmes.
5. Provides services and professional development programmes for furthering the education and experience of seed analysts around the world.
6. Provides an unbiased voice in the seed industry.

MEMBERSHIP PROFILE

The ISTA membership consists of about 210 personal members and 162 member laboratories, of which 95 laboratories are ISTA accredited. The membership is a collaboration of seed scientists and seed analysts from universities, research centers and governmental, private and company seed testing laboratories around the world. ISTA values and promotes

the diversity of membership, this being the basis for its independence from economic and political influence.

The ISTA membership consists of Member Laboratories, Personal Members, Associate and Corporate Members.

Member Laboratory is any laboratory involved in seed testing, science and technology who supports the Association and its objectives and is admitted by the Association**.**

Personal Member is any interested person engaged in the science and practice of seed testing or in the technical control of such activities**.**

Associate Member is a person who is not a Personal Member, but who supports the Association and its objectives, and is admitted by the Association.

Corporate Member is an organization which supports the Association and its objectives, and acts as donor, providing sponsorship to the Association.

METHOD VALIDATION PROGRAMME

ISTA, as an international organization, has a goal of uniformity in seed testing. Seed testing methods should be reliable and reproducible among member laboratories. ISTA achieved this through the International Rules for Seed Testing (ISTA Rules). Before being accepted into the ISTA Rules, most test methods have gone through collaborative study among laboratories to ensure that the test procedure gives reliable and reproducible results in accordance with the given specifications of the test method. However, in the past, ISTA has not always had a consistent system for the introduction of seed test methods into the ISTA Rules, the process varying depending on which of ISTA's Technical Committees put forward the Rules Proposal. This problem was first addressed by the ISTA Seed Health Committee, who in 2000 produced their 'Handbook of Method Validation for the Detection of Seed-Borne Pathogens'. In 2002, the ISTA Executive Committee decided that method validation should apply to all seed quality testing, not just tests for seed health.

ISTA ACCREDITATION

What is ISTA Accreditation?

Accreditation means the procedure by which an authoritative body gives formal recognition that a body or person is competent to carry out specific tasks (ISO/IEC Guide 2:1996).

The aim of ISTA Accreditation is to verify if a seed testing laboratory is technically competent to carry out seed testing procedures in accordance with the **'ISTA International Rules for Seed Testing'**. Accredited laboratories must show that they run a quality assurance system fulfilling the requirements of the ISTA Accreditation Standard. The laboratories accredited by ISTA are authorized to issue **ISTA Seed Lot and Sample Certificates**.

By reporting seed test results on ISTA Seed Lot Certificates, the issuing laboratory assures that the sampling and testing has been carried out in accordance with the ISTA Rules. Methods of the ISTA Rules have been validated, internationally harmonized and voted on by the ISTA membership.

Accredited laboratories are reassessed in regular intervals to examine if they continuously abide by the ISTA accreditation requirements. According to the testing capabilities, accredited laboratories are obliged to participate in relevant proficiency test rounds. Failure in the proficiency test programme may lead to suspension of the accreditation.

What are the benefits of ISTA Accreditation

…for the seed seller?

Seed producers who want to have their seed tested have to be sure that the results produced are reliable and reflect the true quality of the seed to be sold. These results are influenced by many factors, such as competence of analysts, use of appropriate equipment, use of validated methods, accurate recording and reporting, etc.

… for the seed buyer?

Seed buyers are interested in buying seed of high quality. This is to be proofed through testing the seed lots' quality in a seed testing laboratory. Test reports, e.g. ISTA Certificates issued by accredited laboratories provide the seed buyer with confidence that the results on the test report correspond to the quality of the seed lot. To realise the quality of the purchased seed is lower than expected is costly and sometimes even too late to do something about it.

… for the laboratory?

ISTA Accreditation gives a laboratory formal recognition that it is technically competent to test seed using the ISTA methods and producing reliable results. Through the independent technical evaluation of a laboratory's performance, the laboratory receives assurance that its work is performed correctly and appropriately. During the on-site assessment, various aspects of the laboratory's work is looked at, improvement potential and non-conformities are identified.

As accreditation is becoming more and more accepted by authorities, customers and stakeholder to be an efficient tool to evaluate a laboratory's testing performance, accreditation is in fact an important marketing tool. The laboratory's address and scope of accreditation will be published on the ISTA web site for access to customers. Accredited laboratories are authorised to issue ISTA Certificates needed by seed producers to ship seed into various countries.

MANAGEMENT OF THE ASSOCIATION

ISTA is managed and directed by an Executive Committee, comprising of a President, 1st and 2nd Vice President, and 8 members-at-large. All Executive Committee members are designated members of ISTA. The finances and administration of the

association is managed by the ISTA Secretariat, based in Switzerland. This is lead by the Secretary General and 8 staff members.

TECHNICAL COMMITTEES

14 subject-focused Technical Committees and 1 Task Force are responsible for the development of new methodology for seed testing. The Technical Committees are made up of approximately 200 energetic members, many of which are active in more than one committee. Each committee is headed by a chair and vice chair. ISTA Technical Committees include Bulking and Sampling, Flower Seed Testing, Forest Tree and Shrub Seed, Germination, Moisture, Nomenclature, Seed Health, Purity, Rules, Statistics, Seed Storage, Tetrazolium, Variety, Vigour and the GMO Task Force.

REFERENCE: http://www.seedtest.org

ट्रेप–ट्री विधी द्वारा साल छेदक का प्रबंधन

आनन्द कुमार दास, राम भजन सिंह, डॉ. एन. कुलकर्णी एवं डॉ. एन. रायचौधरी

वन कीट प्रभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

साल छेदक का प्रबंधन

ग्रसित साल वृक्षों का वर्गीकरण अथवा वृक्षों का लक्षणों के आधार पर गिनती करना, साल छेदक कीट की तीव्रता, क्षति एवं स्थिति का अनुमान जानने के लिए उपयुक्त होता हे। यह गिनती जनवरी – फरवरी में उनके लक्षणों के आधार पर की जाती है। ग्रसित सभी कक्षों में प्रत्येक प्रभावित वृक्ष को मार्गदर्शिका के अनुसार श्रेणीवार चिन्हित करना, जी.बी.एच. नोट करना तथा स्थल की जी.पी.एस. रीडिंग भी नोट किया जाना आवश्यक है। चूंकि साल बोरर की उपस्थिति पायी गयी है अतः श्रेणी–1 से श्रेणी–3 तक के प्रभावित वृक्षों को साल वन क्षेत्र से हटा कर 4–5 कि0मी0 दूर स्थानान्तरित कर देना चाहिए। तथा बचे हुए अन्य श्रेणीयों के वृक्षों के प्रबंधन हेतु ट्रेप–ट्री आपरेशन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

ट्रेप–ट्री आपरेशन

वृक्षों को श्रेणीवार चिन्हाकीत करने एवं उसकी गणना करने के पश्चात साल बोरर के प्रबंधन हेतु ट्रेप–ट्री विधी द्वारा वयस्क कीटों को पकड़ा जाता है, जिससे साल बोरर के विस्तार को रोका जा सकता है। ट्रेप–ट्री आपरेशन निम्नानुसार किया जाना आवश्यक है।

1. प्रभावित स्थल पर लगभग 1 ट्रेप–ट्री प्रति हेक्टेयर की दर से प्रथम बारिश के बाद से ही ट्रेप–ट्री की कार्यवाही किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।
2. ट्रेप लगाने के लिए वर्षा ऋतु के प्रारम्भ के साथ उचित स्थान जहॉ पर साल बोरर प्रभावित वृक्षों कि संख्या अधिक हो का चयन किया जाना चाहिए।
3. ट्रेप ट्री आप्रेशन हेतु आंधी तुफान से गिरे हुए या टेढ़े मेढ़े साल वृक्ष जो आर्थिक दृष्ठि से कम उपयोगी हो ऐसे वृक्षों का चयन करना चाहिए।
4. ट्रेप ट्री आप्रेशन हेतु साल वृक्ष की 60 से 80 से0मी0 गोलाई एवं 2–3 मीटर लम्बाई की शाखा का उपयोग किया जाना चाहिए।
5. उपयुक्त शाखा के दोनों सिरे से 1–1 फुट तक छाल को रस निकलने तक पीटना चाहिए जिससे शाखा से साल की महक आने लगती है तथा शाखा की छाल ढीली पड़ जाना चाहिए।
6. इन शाखाओं को चयनित स्थानों में ले जाकर रखा जाना चाहिए तथा उसे साल वृक्ष के पत्तों से अच्छी तरह से ढक दिया जाना चाहिए।
7. अगले दिन सुबह सूर्योदय के पहले ट्रेप शाखा का निरीक्षण किया जाना चाहिए।
8. बीटल साल की गंध से आकर्षित होकर रस पीने हेतु शाखाओं में बैठते हैं इन बीटलों को सावधानी पूर्वक पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
9. पकड़े गये बीटलों को इन्सेक्टिसाइड के घोल, मिट्टी के तेल में डूबोकर अथवा सावधानी से उनके सिर को तोड़कर मार देना चाहिए। तथा उनके शरीर को जमीन में 2–3 फीट अन्दर दबा देना चाहिए।

ट्रेप–ट्री ऑपरेशन की विधि का प्रदर्शन

पेड़ों पर बसते है, हमारे प्राण

ममता मेश्राम

वानिकी अनुसंधान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिन्दवाड़ा

जिस दिन मनुष्य ने इस ग्रह में पहली बार सांस ली, उसी दिन से पेड़ो से उसका रिश्ता जुड़ गया। उसकी हर सांस पेड़ों की देन है हम है, क्योकि पेड़–पौधे है। जब लाखों वर्ष पहले सागरो में जीवन की नीव पड़ी और एक कोशिका वाले अमीबा जीव पैदा हो गये तो कुछ नन्ही कोशिकाओं ने सागर जल से बाहर निकल कर अपने लिए सूरज की रोशनी से भोजन बनाना शुरू किया। वे कोशिका ही विकास की सीढियॉ चढकर पेड़– पौधों के रूप में पनपी। उन्होने हवा, पानी और सूरज की रोशनी से भोजन बनाना शुरू किया। पेड़–पौधों आज भी इसी तरह अपने लिए भोजन बना रहे है। भोजन बनाते समय वे पत्तियों से प्राणवायु ऑक्सीजन बाहर निकालते है। इसी ऑक्सीजन में हम और दुसरे सभी जीवधारी सांस लेते है। ये हमारी सांसों के कारखाने हैं।

यही बताया गया है कि 50 वर्ष में एक पेड 15,70,000 रूपये मूल्य का लाभ देता है। कुछ वर्ष पहले कलकता विश्वविद्यालय के डॉ टी एम दास ने पेडों के भौतिक लाभ का हिसाब लगाया और कहा कि पेड़ अपने 50 वर्ष के जीवन काल मे कम से कम 15,70,000 रूपये मूल्य की सेवायें प्रदान करता है। इसमें लकडी और फल, फूलों की कीमत शमिल नही की गयी। 50 वर्ष में एक पेड़ करीब 2.5 लाख रूपये मूल्य की ऑक्सीजन 2.5 लाख रूपये मूल्य की भूमि की उर्वराशक्ति और 5 लाख रूपये मूल्य के बराबर प्रदुषण का नियंत्रण करता है। इसके अलावा वर्षा कराने, नमी रोकने, पशु–पक्षियों को आश्रय देने और खाद्य प्रोटीन के निर्माण में भी योगदान करता है। अनुमान लगाया गया है कि एक पेड़ एक वर्ष में औसतन एक टन ऑक्सीजन पैदा करता है और दो बच्चों के लिए पर्याप्त प्रोटीन बनाता है।

हॉल ही में देहरादुन स्थित भारतीय वन अनुसंधान संस्थान ने भी आर्थिक दष्टि से पेड़ों का मुल्यांकन किया है उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के एक हेक्टयर वन से पर्यावरण की दष्टि से 1,41,00,000 रूपये मूल्य का लाभ मिलता है। इस 15,70,000 रूपये मूल्य हिसाब से अगर किसी बांध से 40000 हेक्टयर वन भूमि डूबती है तो पर्यावरण की दष्टि से 56,000 करोड रूपये का नुकसान होगा। इस मुल्यांकन मे भी करीब 2.5 लाख रूपये मूल्य की नमी बनाये रखता है और भूमि संरक्षण और 20,000 रूपये मूल्य की पशु प्रोटीन का संरक्षण करता है और भूमि के जल चक्र को सुधारता है और करीब 5 लाख रूपये मूल्य के बराबर प्रदुषण का नियत्रण करता है। पक्षियो और जीवों को लगभग 2.5 लाख रूपये मूल्य का आश्रय देता है। संस्थान की रपट के अनुसार पक्षियों और अन्य जीवों को आश्रय देने,वायु प्रदुषण रोकने और भूमि प्रदुषण रोकने और भूमि कटाव से बचाव के अनुमान में घट–बढ हो सकती है क्योकि इनका सही अंदाजा लगाना आसान नही है।

चारों ओर कटते हुए पेड़ों को देखकर आज भला कोई इस बात पर विश्वास कर सकेगा कि कभी लोगों ने अपने इन मुक और अचल हरे साथियों के लिए उनसे लिपट– लिपट कर प्राण दे दिए थे। एक–दो नही 365 पुरूषों और महिलाओं की गर्दन खेजड़ी के पेड़ों के साथ–साथ काट दी गई थी। वृक्षों के लिए अपने प्राण देने वे लोग थे राजस्थान के खेजड़ली ग्राम के बिस्नोई। आज से 261 वर्ष पहले 1,750 मे जब औरंगजेब का शासन था तब जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने अपना महल बनाने लिए बिस्नोइयों के खेजड़ली गॉव से खेजड़ी के हरे वृक्ष काटने का हुक्म दिया। उसके आदमी कुल्हाड़ियां लेकर गांव में पहुँचे तो पुरूष और औरते हरे वृक्षों से लिपट गए। राजा के आदमियों ने पेड़ों के साथ–साथ 69 औरतें और 294 पुरूषों की गर्दन काट डाली। महाराजा को खबर मिली तो दौडा आया और पेड़ों को काटने से अपने आदमियों को रोका। उसने बिस्नोईयों के गॉवों में हरे पेड़ों को काटने और वन्य प्राणियों के आखेट पर रोक लगा दीं बिस्नोईयों का पेड़ों और वन्य प्राणियों से आज भी वही श्रद्वापूर्ण सम्बन्ध है।

नीम का एक पेंड़ हर घर के पास लगाया जाता रहा है। आज भी गॉवों में घरों में नीम का पेड जरूर लगाया जाता है। नव वर्ष का स्वागत इसकी कड़वी पत्तियॉ और मीठी मिश्री से किया जाता है। नीम कड़वा है लेकिन इसकी बयार बहुत शीतल होती है। इसमें अनेक औषधीय गुण है। नीम पुरा हकीम है। इससे कई औषधीयॉ बनाई जाती है। इसकी बीजों में मारगोसा तेल होता है जो चर्म रोगों की अचुक औषधीय है। पत्तियों के धुएं से मच्छर और कीडे–मकोड़े भगाए जाते है। पत्तियों का काढा खाज–खुजली की दवा है।

बरगद एक विशाल वृक्ष है। इसकी हवाई जड़े निकलकर जमीन को छु लेती है। और धीरे–धीरे धरती के भीतर जाकर बरगद के विशाल वृक्ष को सहारा देती है। इस जटा–धारी वृक्ष को शिव का रूप माना गया है। बरगद का वर्णन वेदो में भी किया गया हैजिससे पता चलता है कि यह प्राचीन वृक्ष है। बरगद के अनेक बड़े–बूढे वृक्ष आज भी सीना ताने खड़े है। कलकता के वनस्पति उद्यान में 300 वर्ष पुराना वट वृक्ष हैं। भचोंड़ से 20 किलामीटर दुर नर्मदा किनारे भी प्राचीन वृक्ष कबीर वट है। इसका एक और प्राचीन वृक्ष अड़ियार मद्रास में है।

सेमल, कंदब, अशोक, शिरीष, जामुन, अर्जुन, शीशम, अमलतास और गुलमोहर भी पर्यावरण को संवारने वाले मनोहारी वृक्ष है। सेमल, वंसत आगमन का संदेश देता हैं। यह अपने मांसल नांरगी–लाल फूलों की छटा बिखेर देता हैं ढ़ाक या पलाश भी नांरगी–लाल फूलों से ढ़क जाते है। गर्मी बढ़ती है और गुलमोहर के लाल फूल निकल आते है। प्रचंड गमी पड़ती है और अमलताश पीले झाड़–फानूसों के लाल फूल निकल आते है। वर्षा ऋतु की शुरूवात होती है और झूलुहा झुले कदम के पीले गोल फूलों से ढ़क जाते है। कंदब के वन कभी कृष्ण की लीलास्थली थी ।

सदाबहार अशोक भी पवित्र माना गया है। इसके बिना कोई उद्यान पूर्ण नही जाता यह बेहद सुंदर वृक्ष है। इसके फूल पहले नांरगी रंग के होते है, फिर लाल हो जाते है।

अनुमान है कि एक हेक्टयर में उगे हुए हर साल 3,5 टन प्रदुषित वायु को सोखकर 2टन ऑक्सीजन हमें देते है। औद्योगिक विष अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ के डॉ एम के बेग के अनुसार अगर कारखानों और मिलों के आसपास नीम, पीपल और गुलर लगाये जाए तो सल्फर डाइऑक्साइड की विषैली मात्रा को कम किया जा सकता है इससे कारखानों और मिलों की आसपास की हवा शुद्व होगी। कोयला, पेट्रोल आदि के जलने से यह गैस कॉफी मात्रा में निकलती है जो स्वाथ्य के लिए खतरनाक है उन्होने अपने प्रयोग नीम, सेमल,बरगद,गूलर,पीपल,आम,अमरूद और इमली पर किए।

पेड़–पौधे हमें शोर के प्रदुषण से भी बचाते है। चारों ओर मोटर–कारों लाउडस्पीकरों और तरह– तरह का शोर लगातार बढ़ता ही जा रहा है वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर यही हालत रही तो हम में से

अधिकांश लोग बहरे हो जायेगे। इंग्लैड की जोपन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक मागरेट विलियम्स, कीव एटनबरों और ब्रेडफोड यूनिवर्सिटी के जेनेट बुक्स ने पता लगाया है कि पेड़ हमे शोर से बचा सकते है।इसके घरों एंव आसपास पेडों की केवल एक कतार के बजाय पेडों और झाड़ियों की कई कतारे लगानी चाहिए। चौड़ी पत्तियों वाले वृक्ष शोर को अधिक रोकते है इस तरह पेड शोर के खतरे से बचाएंगे और सांस लेने के लिए शुद्ध हवा भी देगे।

पेड़–पौधों ने धरती पर 40 करोड़ वर्ष पहले कदम रखे जबकि आदमी कुल एक लाख वर्ष पहले आदमी बना। इन एक लाख वर्षों में ही उसनें इस ग्रह के वातावरण को इतना बिगाड़ दिया है कि स्वंय विनांश के कगार पर जा खड़ा हुआ है। हमें गिंगो और बरगद जैसे बड़े बुजुर्ग पेड़ो से सीख लेनी चाहिए कि किस तरह नई पीढ़ी सदियों तक पनपती रहे। इसके लिए हमें पेड़ों से प्यार करना होगा और प्रकृति से छेड़छाड़ छोड़नी होगी।

सौर हलचल और पर्यावरण

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा

संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

पृथ्वी की परिस्थितियों, वातावरण, मौसम, वृक्ष-वनस्पतियों और प्राणी-समुदाय की शारीरिक-मानसिक स्थिति पर सूर्य की गति और उसमें समय-समय पर होते रहने वाले परिवर्तनों का असाधारण प्रभाव पड़ता है। नवीनतम खोजो से यह तथ्य अधिक स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है कि सौर धब्बों (सनस्पॉटस), सौर ज्वालाओं (सोलार फ़्लेयर्स) का सीधा प्रभाव अन्तर्ग्रही संतुलन एवं मानवी काया और मन-मस्तिष्क पर पड़ता है। जब भी इस तरह के परिवर्तनों में अभिवृद्धि होती है प्रकृति में असंतुलन बढ़ जाता है जिसकी परिणति प्राकृतिक विक्षोभों और विस्फोटक घटनाक्रमों के रूप में होती है। सौर धब्बों के उभरने और उनके द्वारा पृथ्वी पर परिवर्तनों की शृंखला का सुविस्तृत वर्णन सर्वप्रथम वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में किया जो आज पाश्चात्य वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान का प्रमुख-विषय बना हुआ है। खगोल वेत्ताओं का मत है कि हर ग्यारहवें साल में सूर्य की सक्रियता बढ़ जाने से आणविक विस्फोट होता है जिसके कारण सूर्य से रेडियो विकिरण अधिक मात्रा में उत्सर्जित होता है। सामान्यतः मौसम परिवर्तन प्रकृति का नियम है जो विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है । प्रकृति चक्र के अनुरूप यह बदलता भी रहता है, पर जिन दिनों सूर्य धब्बों (सनस्पॉटस) की संख्या बढ़ जाती है उन दिनों पृथ्वी पर एक विशिष्ट प्रकार की जैव चुम्बकीय लहर चलती है। मौसम भी विशेष प्रकार का रहता है। हम इसे अनुभव नहीं कर पाते, पर पेड़-पौधे उन्हें अनुभव कर लेते हैं। सूर्य के इस प्रचण्ड तूफानी चुम्बकीय प्रवाह के माध्यम से विश्व ब्रह्मॉंड में ध्वंस और सृजन की दोनों ही प्रक्रियायें साथ-साथ संपन्न होती हैं, पर उसका सर्वाधिक प्रभाव अवांछनीयताओं के विस्मार होने के रूप में ही सामने आता है ।

सुप्रसिद्ध अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक जॉन का कहना है इस शताब्दी में सूर्य धब्बों की सबसे ज्यादा अभिवृद्धि सन् 1968 से आरंभ हुई है और उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायेगी। सौर सक्रियता का सामान्य चक्र ग्यारह वर्षीय होता है, किन्तु ग्रहणकाल में यह सक्रियता कई गुना अधिक बढ़ जाती है। खग्रास सूर्यग्रहण की अपेक्षा पूर्ण ग्रहणकाल में सौर धब्बों की संख्या भी सर्वाधिक बढ़ी-चढ़ी होती है। छोटे सूर्य ग्रहणों की शृंखला लम्बी है। कई बार तो एक ही वर्ष में पाँच से भी अधिक सूर्य ग्रहण होते देखे गये हैं, पर पूर्ण सूर्यग्रहण कई वर्षों बाद ही आता है। इस सदी में बड़े खग्रास सूर्य ग्रहण 21 अगस्त 1994 एवं 21 मई 1938 को हुए थे। ये दोनों ही क्रमशः प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व घटित हुए थे। 16 फरवरी 1980 का सूर्य ग्रहण उक्त दोनों से भी बड़ा था । खगोलवेत्ताओं एवं भौतिक विज्ञानियों का कहना है कि सौर सक्रियता में निरन्तर हो रही अभिवृद्धि घटनाओं एवं विभीषिकाओं की दृष्टि से असामान्य स्तर की होंगी। अगले दिनों सूर्य धब्बों की संख्या और भी अधिक बढ़ जायेगी, परिणाम स्वरूप पृथ्वी पर जबर्दस्त चुम्बकीय तूफान उठेंगे और साथ ही सौर ज्वालायें एवं हवायें और भी घातक हो उठेंगी। उस समय न केवल वातावरण एवं मौसम में भारी परिवर्तन होगे, वरन् मनुष्य को भी शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक रूप से उथल-पुथल का सामना करना पड़ेगा।

सूर्य पृथ्वी पर न केवल जीवन चक्र चलाने के लिए जिम्मेदार है, वरन् समूचे धरातल की भौतिक संरचना में अपनी शक्तियों से दीर्घकालीन परिवर्तन लाने के लिए भी उत्तरदायी है । करोड़ों किलो मीटर की दूरी के बावजूद भी सूर्य और पृथ्वी का संबंध अन्यान्य ग्रह-गोलकों की अपेक्षा अत्यधिक घनिष्ठ है यही कारण है कि सूर्य मंडल की गतिविधियों में होने वाले परिवर्तनों का सीधा प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है और उसमें भू भौतिकीय परिवर्तन आते हैं। सौर सक्रियता के कारण भू भौतिकीय परिवर्तन और प्राणियों की जैव रासायनिक संरचना तथा सौर गतिविधियों और भूकंप का भी आपसी रिश्ता है।

सुविख्यात महिला जीवविज्ञानी मार्शा ऐडम्स का कहना है कि लगभग सभी जैविकीय एवं भौतिक परिवर्तन सौर गतिविधियों में उतार-चढ़ाव के कारण ही होते हैं। भूकंप एवं ज्वालामुखी विस्फोट से लेकर मौसम में विशेष परिवर्तन तक की भू-भौतिकीय प्रक्रियाएँ एवं हिंसात्मक गतिविधियों युद्धों, महामारियों से लेकर महाक्रान्तियाँ तक की घटनायें किसी न किसी तरीके से सौर हलचलों से जुड़ी हुई हैं विभिन्न अस्पतालों में 11 हजार-रोगियों का गंभीरतापूर्वक निरीक्षण-परीक्षण करने के पश्चात् उनने निष्कर्ष निकाला है कि सौर धब्बों की अभिवृद्धि के दिनों में मनुष्य में कुछ विशेष शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक लक्षण उभरते हैं। प्रायः सभी जैविक क्रियायें सौर हलचलों में उत्पन्न तीव्रता के कारण अव्यवस्थित व अनियमित हो उठती हैं। यह भी पाया गया है कि उन्हीं दिनों भूकंप भी आते हैं। उनका मत है कि जो सामर्थ्य या प्रेरक बल मनुष्यों में दैहिक या मानसिक भावनात्मक लक्षण या परिवर्तन उत्पन्न करते हैं, वही बल भूकंप उत्पन्न करने वाले कारकों को प्रेरित करते हैं और उन्हीं के कारण मानवेत्तर प्राणियों-पशु पक्षियों के व्यवहार में भी विलक्षणता उत्पन्न होती हैं। जो भूकंप आने के ठीक पहले या कुछ देर बाद उत्पन्न होती है।

जीवविज्ञानी मार्शा ऐडम्स के अनुसार यह सभी प्रेरक-बल सौर सक्रियता में तीव्रता उत्पन्न होने के कारण उल्लेखनीय रूप से प्रभावित होते हैं। सौर हलचलों की-जिसमें सन स्पाट्स एवं सौर ज्वालायें भी सम्मिलित हैं-की तीव्रता न केवल भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं के लिए, वरन् विलक्षण मौसम स्थिति के लिए भी उत्तरदायी हैं। इसकी प्रभाव-प्रतिक्रिया मनुष्यों में कुछ दिनों बाद व्यक्त होती है, जब कि भूकंप लगभग चार दिन बाद आते हैं । वैज्ञानिकों का कहना है कि सौर गतिविधियों में सबसे ज्यादा खतरनाक एवं शक्तिशाली 'सोलर फ्लेअर' अर्थात् सौर ज्वालायें होती हैं। जिह्वा के आकार के लपलपाते हुए यह विशालकाय उभार अपने भीतर दो करोड़ डिग्री केल्विन से भी ज्यादा तापमान समेटे हुए होते हैं और 10 से 100 अरब मेगाटन हाइड्रोजन बमों के बराबर ऊर्जा मुक्त करते हैं जिससे किसी भी राष्ट्र को हजारों वर्ष तक बिजली आपूर्ति की जा सकती है। सूर्य धब्बों के चक्र-जिसमें धब्बों की संख्या प्रत्येक 11 वें वर्ष में अधिकतम होती है, के साथ-साथ सौर ज्वालाओं में भी अभिवृद्धि होती जाती है। जिन दिनों सूर्य धब्बों की संख्या अधिकतम होती है, उन दिनों 2-3 छोटी-छोटी सौर ज्वालायें या प्रदीप्ति प्रत्येक घंटे दिखती हैं, जब कि एक विशालकाय सौर ज्वाला प्रत्येक महीने दिखती है लेकिन 'सोलर मिनिमम' - अर्थात् कम से कम सूर्य धब्बों की स्थिति में कई सप्ताहों तक सौर प्रदीप्ति दिखायी नहीं पड़ते।

पृथ्वी की सतह पर जिस तरह तेज हवायें चलती रहती है, उसी तरह से सूर्य की सतह पर भी सोलर विन्ड (सौर आँधी) चलती है, अन्तर केवल इतना ही होता है कि यह आँधी मात्र एक ही दिशा में चलती है। सूर्य-धब्बों की तीव्रता के दिनों में यह तूफान सौर-मंडल से पृथ्वी पर आ

जाता है और पृथ्वी की चुम्बकीय स्थिति में भारी बदलाव लाता है। 15 लाख किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलने वाले सूर्य कणों से युक्त इस तूफान से पृथ्वी की भू-चुम्बकीय स्थिति में जो परिवर्तन होता है, उसका प्रभाव प्राणि जगत एवं वनस्पति जगत पर तो पड़ता ही है, साथ ही उसका अत्यन्त हानिकारक प्रभाव इलेक्ट्रानिक मशीनरी, संचार माध्यमों, विद्युत-आपूर्ति करने वाले संयंत्रों कृत्रिम उपग्रहों नाभिकीय संयंत्रों आदि पर पड़ता है इस संबंध में टेनेसी स्थिति ओकेरिज नेशनल लैबोरेटरी के विशेषज्ञ द्वय पाडँल बर्नेस तथा जेम्स वाँन डाइके ने पिछले दिनों 13 मार्च 1981 को घटित घटनाओं का हवाला देते हुए कहा है कि उस दिन सौर ज्वालायें विश्व इतिहास में अपने अब तक के प्रचंडतम रूप में थीं लाखों कि0मी0 लम्बी इन ज्वालाओं के कारण उत्पन्न सूर्यकणों युक्त तूफानी हवाओं से फ्लोरिडा के पास हाइड्रो क्यूबेक पावर-सिस्टम पूरी तरह फेल हो गया था। इन्हीं सूर्य-हवाओं के कारण न्यू-जर्सी स्थित एक नाभिकीय संयंत्र के सारे ट्राँसफार्मर जल कर राख हो गये थे।

पृथ्वी के इन दिनों अधिक गरम होने का कारण सूर्य-हलचलों की तीव्रता में आया उतार-चढ़ाव हैं अगले दिनों सौर-गतिविधियाँ अधिक प्रचंड होगी जिससे न केवल भू-भौतिकीय परिवर्तन होगे वरन् मानवी चेतना भी प्रभावित होगी। सूर्य, जैसा कि बार-बार स्पष्ट किया जाता रहा है, मात्र जलता हुआ आग का गोला नहीं है, इसके आधिदैविक व आध्यात्मिक प्रभाव समग्र ब्रह्माँडीय चेतना पर बड़े गहरे स्तर तक पड़ते है । एक अध्ययन के मुताबिक सूरज पर होने वाली गतिविधियों की वजह से धरती पर बिजली गिरती है। वैज्ञानिकों ने अध्ययन में पाया है कि तेज गति के सौर कणों का झोंका जब वायुमंडल में प्रवेश करता है तो बिजली बोल्ट की संख्या बढ़ जाती है। अब जबकि सूरज पर होने वाली गतिविधियों पर सैटेलाइट के द्वारा बारीकी से नजर रखी जाती है इसलिए यह संभव है कि सौर कणों की खतरनाक आंधी के धरती के वायुमंडल से टकराए जाने का पूर्वानुमान लगाया जा सके।

सौर कणों की आंधी के धरती के वातावरण में प्रवेश करने के साथ ही उत्तरी ध्रुव पर प्रकाश फैल सकता है, लेकिन शोध बताता है कि कैसे ये मौसम को भी प्रभावित कर सकता है। डॉ. स्कॉट ने कहा, 'सौर आंधी लगातार एक जैसी नहीं रहती, यह तेज और धीमी होती रहती है। चूंकि सूरज घूमता रहता है इसलिए ये धाराएं एक-दूसरे का पीछा करती रहती है इसके चलते यदि तेज सौर आंधी का पीछे धीमी सौर आंधी है तो इससे सौर कणों की सघनता बढ़ जाती है।' वैज्ञानिकों ने पाया कि जब सौर कणों की आंधी की गति और प्रबलता बढ़ती है तो बिजली गिरने की दर भी बढ़ जाती है। शोधकर्ता दल ने कहा, 'सौर कणों के धरती के वातावरण से टकराने के बाद एक महीने तक मौसम अशांत रह सकता है।'

शोधकर्ताओं ने उत्तरी यूरोप के आकड़ों का इस्तेमाल करके यह पाया कि 400 दिनों में 321 बिजली गिरने की घटना की तुलना में तेज गति वाले सौर आंधी के बाद 400 दिनों में औसतन 422 बिजली गिरने की घटना हुई। उत्तरी ध्रुवीय प्रकाश डॉ. स्कॉट ने कहा, 'यह चौंकाने वाला परिणाम था क्योंकि पहले यह सोचा गया था कि सौर आंधी में बढ़ोत्तरी का उल्टा असर होगा।' शोधकर्ता दल इसकी प्रक्रिया को लेकर वास्तव में आश्वस्त नहीं है लेकिन उन्होंने कहा कि सौर कण बादलों में प्रवेश करके विद्युत ऊर्जा को बिजली में तब्दील कर देता है। हालांकि इसकी प्रक्रिया से संबंधी सवालों के जवाब अभी भी अधूरे हैं। लेकिन सौर कणों के पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करने से संबंधी बहुत सी जानकारियां मौजूद हैं जो सौर आंधी की भविष्यवाणी करने में मदद कर सकती हैं ।

Know your Biodiversity

Sanjay Singh and Dr. P. B. Meshram

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Aristolochia indica

Aristolochia indica is a perennial creeper of family *Aristolochiaceae*, commnly known as Indian-birthwort in English, Hukka bel in Hindi, Sampsun in Marathi, Isvaramuli in Tamil and Esvaraveru in Telugu. The family *Aristolochiaceae* is a group of flowering plants that has attractive leaves and flowers. The offbeat colors and patterns of leaves and flowers make them one of the most desired plants for plant collectors and gardeners.

The genus *Aristolochia* is characterized by united sepals which form a long tube, often curved, enclosing stamens and gynoecium completely. It produces a pungent odour to attract flies/butterflies which pollinate them. *Aristolochia indica* has simple alternate, short petioled leaves; the leaf blade is ovate or somewhat wedge shaped. The young leaves are light purplish. The fruit is a capsule, roundish or oblong and hexagonal, 2-4 cm long and slightly less broad, with shallow grooves and six valves, containing triangular seeds. The young roots are light brown and rarely smooth, while the older ones are comparitively rough due to the development of cork, lenticels and the presence of scars of rootlets.

The plant is reputed for its medicinal importance since ancient times. It is used in Ayurvedic formulations to treat cough, leprosy, ulcers, indigestion, fever, inflammation, vitiligo, swelling, skin diseases, diarrhoea and snake-bite. However, it prohibits the use of any formulation of the species during pregnancy, as it may cause abortion.

The plant is commonly distributed in almost all provinces of India, Srilanka and Nepal. The common swallow tail butterfly lays eggs on the vines of *Aristolochia* and the caterpillar feeds on the leaves. Most of the swallow tail caterpillars in the tribe *Troidini* feed on Aristolochiales foliage. It is also considered critical for survival of common birdwing and southern birdwing butterflies. Due to habitat fragmentation and biotic pressure the population of the species is declining, this may also affect the population of the associated butterflies. Conservation efforts are required to restore the populations of this species.

Copsychus saularis

The Oriental Magpie Robins (*Copsychus saularis*) are distinctive black and white birds occuring throughout the Indian subcontinent and parts of Southeast Asia. They are common in urban gardens and forest. One cannot miss their songs; the bird is a delight to ears as well as eyes. The male has black upperparts, head and throat and characteristic white shoulder patch. Under part and the sides of the tail are white. Juveniles have slaty brown upper part and head.

It is mostly seen hopping on grounds, branches or foraging in leaf litter on the ground with cocked tails. They are most active late at dusk. Males sing loudly from the top of trees or other high perches during breeding season, which last from March to July. The display involves puffing up the feathers, rising of bill, fanning of tail during courtship. They use elements of other birds call in their songs. The diet of Magpie robins includes mainly insects and other small invertebrates. They are reputed as insectivorous, but occassionally they consume flower nectar, geckos, leeches, centipedes and even fish.

The species is considered least concerned globally. They have few avian predators. However, several pathogens and parasites have been reported from the species. Magpie robins were preferred as cage birds for their singing abilites in the past. In some parts of Southeast Asia they continue to be part of pet trade. The species is also the National bird of Bangladesh.

सब पढ़ें सब बढ़ें, इनको भी हैं ज्ञान

सहारा मिलेगा इसी सोच को, वन संज्ञान के तत्वाधान